संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

वर्ष : १३
अंक : १२६
जून २००३
ज्येष्ठ-आषाढ़
वि. सं. २०६०

मौनमंदिर (पिरामिड)
अमदावाद आश्रम।
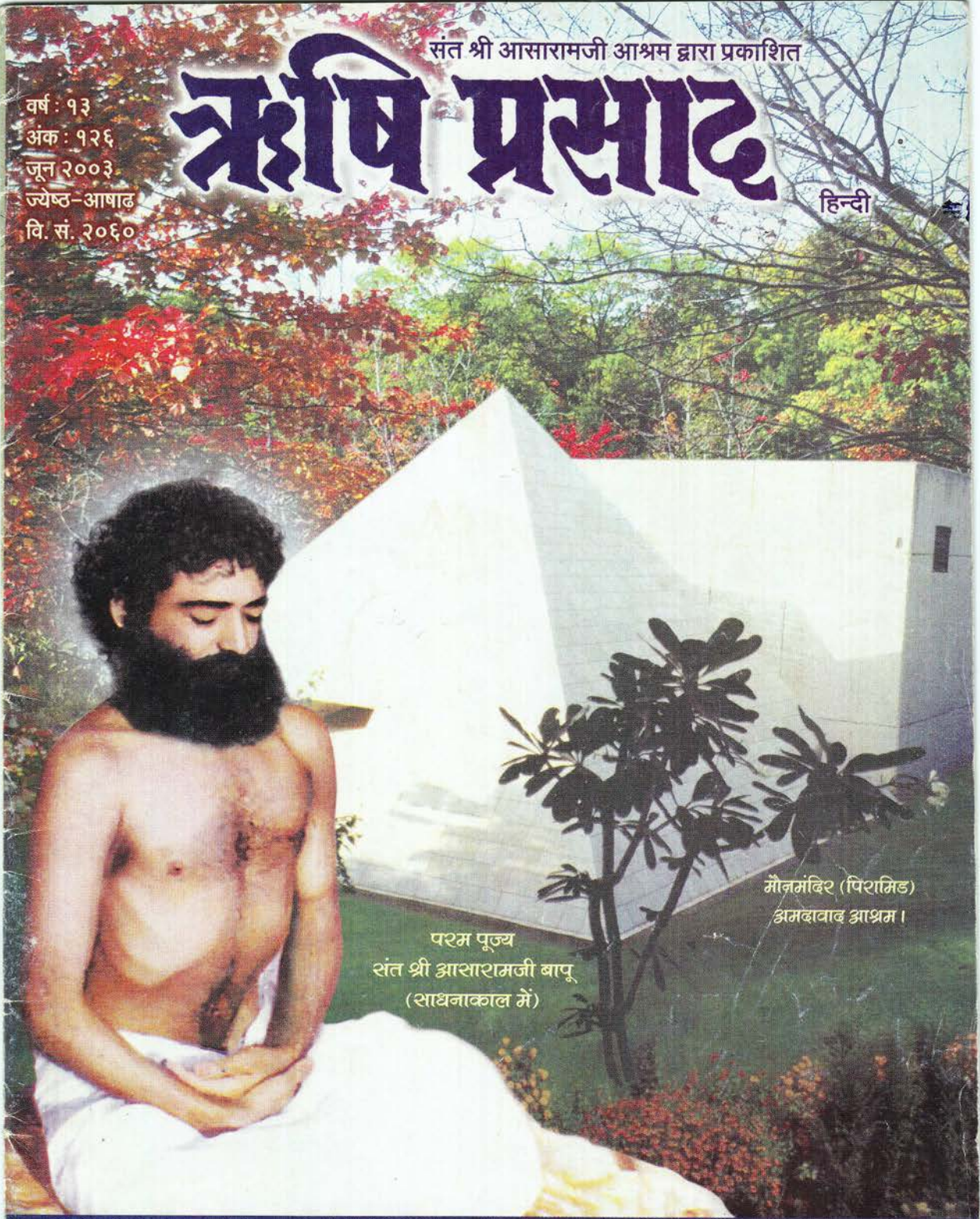
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू
(साधनाकाल में)

एकान्तवासो लघुभोजनादौ मौनं निराशा करणावरोधः...

एकांतवास, मिताहार, मौन, आशारहित होना, इन्द्रियों का निग्रह और प्राणायाम - ये छः साधन साधक के चित्त में शीघ्र ही आत्मप्रसाद की प्राप्ति कराते हैं।
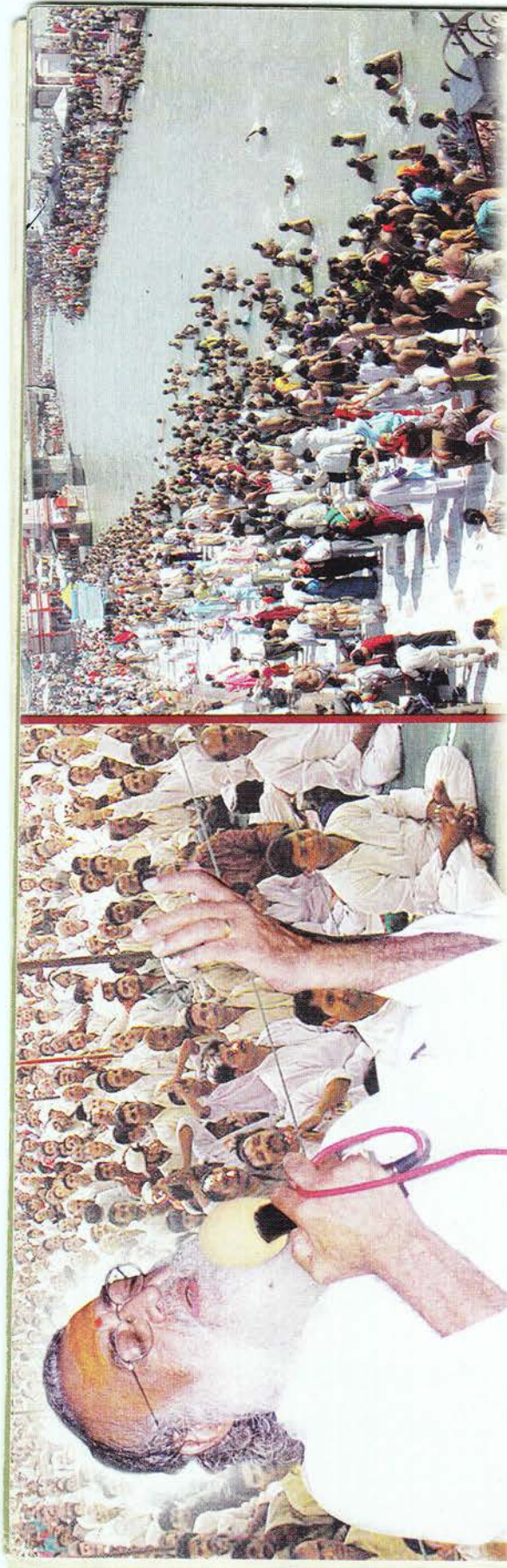
गंगा में स्नान कर, अति शीतल भयो अंग। सुनकर मन पावन हुआ, अति पुनीत सत्संग ॥
हरिद्वार की धरन पर, बही सुधाऽमृत धार। बापूजी के ज्ञानरस, भीग रहे नर-नार ॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२६
९ जून २००३
ज्येष्ठ-आषाढ़, विक्रम संवत् २०६०
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-
नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय 'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम,
संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसाराम वाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

काव्यगुंजन

हे गुरुवर...

हे गुरुवर ! तुम्हें कोटि-कोटि अभिनन्दन।
हे युगद्रष्टा, हे महायति ! पदवन्दन ॥
हे महातिमिर के अंशुमाली, हे युगपरिवर्तक चिर महान !
हे शक्तिपुंज, साहस अमोघ ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे भारत हृदय के स्वाभिमान, हे नवजीवन के नव विधान !
हे अपमानित के सजग त्राण ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे राष्ट्र नौका के कर्णधार, हे लीलाशाह के मृदु दुलार !
हे सत्य सिंधु, हे वीरवृत्ति ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे दिव्य ज्योति, शुभ आराधन ! हे पूज्य चरण अति पावन !
हे राष्ट्रपुरुष, हे महाप्राण ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...

- प्रशांत चौधरी, जोधपुर (राजस्थान)

卐

परमात्मा

परमात्मा ! तू दानी महा, दाता न तुझ सा कोय है।
जो भक्त भजता है तुझे, सो रूप तेरा होय है॥
सच्चित् तथा आनन्दघन, अद्वैत इकरस होय सो।
सोऽहं अहं जो भजे नर, धन्य है अति धन्य सो॥
परमात्मा ! तू ही सर्व है, सब विश्व तू ही धारता।
तू पुत्र, पुत्री, बंधु तू, माता तुही, तू ही पिता॥
जो स्वर्ग अथवा नरक है, घर-धाम-धन या धान्य है।
जब भेद तज कर देखते, तेरे सिवा नहिं अन्य है॥
परमात्मा ! तेरे शास्त्र हैं, तू शास्त्र में नहिं आय है।
है शब्द से तू दूर फिर भी, शब्द लक्ष्य कराय है॥
मन बुद्धि अथवा चित्त से, जाना नहीं तू जाय है।
सच्चा मुमुक्षु बुद्धि द्वारा, बोध फिर भी पाय है॥

- भोले बाबा

तुमसे ही कल्याण हमारा

हे समर्थ ! हे परम हितैषी ! तुमसे ही कल्याण हमारा।
तुम्हें न पाकर व्यर्थ चला जाता, मानव का जीवन सारा॥
परम बंधु युग युग के योगी, महाबुद्ध हे अमर महात्मन्।
चूमे जो चरण तुम्हारे उसका, सफल-हुआ मानव तन॥
देव ! तुम्हारे दर्शन करके, लग जाता तुममें जिसका मन।
तुम्हें छोड़कर कहीं न जाता, तुम्हीं दीखते हो प्रियतम धन।
कितनों ने ही सीख लिया, मरकर जीने का मंत्र तुम्हारा॥
जाने कितने मुरझाये मुख, खिलते देखे तुमको पाकर।
सदा पीड़ितों की पुकार पर, रहे दौड़ते कष्ट उठाकर।
जो कि नहीं सुख देख मिला, वह देखा श्रीचरणों में आकर।
जो न कभी हो सका वही, हो गया तुम्हारा ध्यान लगाकर।
शरण ले लिया उसको जिसने, कभी हृदय से तुम्हें पुकारा॥
तुमको हमने दीनों दलितों, की कुटिया जाते देखा।
अपनी योग शक्ति से उनके, तुमको दुःख सुखाते देखा।
जो कि तुम्हें करना था उसमें, कभी न देर लगाते देखा।
तुमने उसकी सुनी दयामय, जिसको सबने ही दुत्कारा॥
निज तन मन का ध्यान न रखकर, तुमने पर उपकार किया है।
तुमने सदा बिना कुछ चाहे, प्राणिमात्र से प्यार किया है।
हे संघर्षातीत ! तुम्हींने, षट्‌रिपु का संहार किया है।
शरणागत डूबते हुए को, जब देखा तब तार दिया है।
भवसागर में पड़े जीव को, नाथ तुम्हींसे मिला किनारा॥

- पथिकजी महाराज

卐

प्रभु ! ऐसा मुझे ज्ञान दो

प्राणिमात्र का जिसमें कल्याण हो।
मेरे हाथों से दाता वो ही काम हो॥
पंचभूतों की है काया, जिसे माया ने नचाया।
इस काया का न कभी अभिमान हो॥
विषयों ने मन में डाला डेरा, बुद्धि को संशयों ने है घेरा।
फिर जीव से कैसे तेरा ध्यान हो॥
तू है जादूगर न्यारा, जिसने रचा जग सारा।
तेरी महिमा का कैसे बखान हो॥
तेरे रूप अनेक, फिर भी तू एक-का-एक।
सबमें देख पाऊँ तुम्हें, प्रभु ! ऐसा मुझे ज्ञान दो॥

- अशोक भाटिया

तीन प्रकार की सत्ताएँ

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सत्ताएँ तीन प्रकार की होती हैं : १. व्यावहारिक सत्ता २. प्रातिभासिक सत्ता ३. पारमार्थिक सत्ता।

'यह गुलाब है, यह गाय है, यह मोहन है, यह सोहन है...' - पंचतत्त्वों से रचित जो कुछ भी दिखता है वह सब **व्यावहारिक सत्ता** के अंतर्गत है। जगत का लेना-देना, खाना-पीना, अपना-पराया आदि सब व्यवहारमात्र है, सदा नहीं रहता। अतः वह भी व्यावहारिक सत्ता के अंतर्गत ही आता है।

ठूँठे में चोर दिखना, रस्सी में सर्प दिखना, सीप में चाँदी दिखना, स्वप्न - ये सब **प्रातिभासिक सत्ता** के अंतर्गत आते हैं। मानों, स्वप्न में कुत्ते ने आपके पाँव में काटा और वहाँ से खून बह रहा है... यदि इस समय जाग्रत में कोई आपके पाँव पर दवाई लगा जाय तो उसका आपको कोई लाभ नहीं होगा। स्वप्न में स्वप्न का ही वैद्य या चिकित्सक चाहिए और स्वप्न में ही आराम चाहिए। स्वप्न भी सदा नहीं रहता, प्रतिभासमात्र है अर्थात् दिखनेभर को है। स्वप्न से जगे तो स्वप्न का सब कुछ गायब हो जाता है।

व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ताओं में 'मेरे-तेरे' का भेद बना रहता है, किंतु पारमार्थिक सत्ता में कोई भेद नहीं है। वास्तव में पारमार्थिक सत्ता के कारण ही व्यावहारिक और प्रातिभासिक, ये दोनों सत्ताएँ कार्य करती हैं। जो व्यवहार और स्वप्न से पहले था, जो व्यवहार और स्वप्न के समय रहता है और इन दोनों के बाद भी जो रहेगा, जिसका अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता - वही है **पारमार्थिक सत्ता**।

सारे भेद व्यावहारिक सत्ता में ही प्रतीत होते हैं। जड़ जड़ से, जीव जीव से, जीव जड़ से, जीव ईश्वर से, जड़ ईश्वर से भिन्न दिखता है किंतु वास्तव में ये भिन्न नहीं हैं।

'यह अपना आश्रम है... यह दूसरे का घर है...' ये हमारी व्यावहारिक कल्पनाएँ हैं। वास्तव में देखो तो हमारे घर की दीवार का सामान और दूसरे के घर की दीवार का सामान - ईंट, चूना आदि सब पृथ्वीतत्त्व का ही है। इनकी गहराई में कोई भेद नहीं है।

जीव-जीव में जो भेद दिखता है वह भी दिखनेभर को है। शरीर, मन और बुद्धि में भेद हो सकता है लेकिन उनको सत्ता देनेवाला चैतन्य परमात्मा सबमें एक-का-एक है।

जीव और ईश्वर में जो भेद दिखता है वह भी दिखनेभर को है। माया में आये हुए चैतन्य को ईश्वर कहते हैं और अंतःकरण अविच्छिन्न चैतन्य को जीव कहते हैं। ईश्वर की माया को वश में रखने की विशेषता को छोड़ दें और जीव की अविद्या के अधीन रहने की कमजोरी को छोड़ दें तो बाकी का जो है वह एक ही है - **आत्मा सो परमात्मा।**

किंतु जब तक इस बात को नहीं जानते, जब तक पारमार्थिक सत्ता का अनुभव नहीं होता, तब तक प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्ता का प्रभाव नहीं मिटता।

व्यवहार में कितनी भी प्रतिकूलताएँ आयें किंतु आपकी दृष्टि यदि पारमार्थिक है तो व्यवहार के दुःख आपको सता नहीं सकते।

प्रयाणकाल में भी यदि कोई इस प्रकार पारमार्थिक सत्ता का ही चिन्तन करे कि 'मेरी मौत नहीं होती... मौत शरीर पर आ रही है... शरीर प्राणशून्य हो रहा है... मैं उसे देख रहा हूँ...' तो वह मुक्त हो जाता है। यदि मौत के क्षण भी आपको यह पता चल जाय कि आप उसे देख रहे हैं तो आप मौत से पार अपने अमर आत्मा को जानकर मुक्त हो जायेंगे।

बात तो छोटी-सी है। यदि मनुष्य इस युक्ति का सहारा ले तो जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है, अन्यथा अरबों-खरबों रुपये देकर भी माता के गर्भ में उलटा लटकने के दुर्भाग्य से नहीं बच सकता। केवल सद्गुरु ही करुणा करके जीव को हँसते-हँसते जन्म-मरण से छूटने की रीत समझा सकते हैं।

समझे कोई विरला, कर ले बेड़ा पार...

हे गुरुवर...

हे गुरुवर ! तुम्हें कोटि-कोटि अभिनन्दन।
हे युगद्रष्टा, हे महायति ! पदवन्दन ॥
हे महातिमिर के अंशुमाली, हे युगपरिवर्तक चिर महान !
हे शक्तिपुंज, साहस अमोघ ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे भारत हृदय के स्वाभिमान, हे नवजीवन के नव विधान !
हे अपमानित के सजग त्राण ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे राष्ट्र नौका के कर्णधार, हे लीलाशाह के मृदु दुलार !
हे सत्य सिंधु, हे वीरवृत्ति ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...
हे दिव्य ज्योति, शुभ आराधन ! हे पूज्य चरण अति पावन !
हे राष्ट्रपुरुष, हे महाप्राण ! पदवन्दन ॥ हे गुरुवर...

- प्रशांत चौधरी, जोधपुर (राजस्थान)

卐

परमात्मा

परमात्मा ! तू दानी महा, दाता न तुझ सा कोय है।
जो भक्त भजता है तुझे, सो रूप तेरा होय है॥
सच्चित् तथा आनन्दघन, अद्वैत इकरस होय सो।
सोऽहं अहं जो भजे नर, धन्य है अति धन्य सो॥
परमात्मा ! तू ही सर्व है, सब विश्व तू ही धारता।
तू पुत्र, पुत्री, बंधु तू, माता तुही, तू ही पिता॥
जो स्वर्ग अथवा नरक है, घर-धाम-धन या धान्य है।
जब भेद तज कर देखते, तेरे सिवा नहिं अन्य है॥
परमात्मा ! तेरे शास्त्र हैं, तू शास्त्र में नहिं आय है।
है शब्द से तू दूर फिर भी, शब्द लक्ष्य कराय है॥
मन बुद्धि अथवा चित्त से, जाना नहीं तू जाय है।
सच्चा मुमुक्षु बुद्धि द्वारा, बोध फिर भी पाय है॥

- भोले बाबा

तुमसे ही कल्याण हमारा

हे समर्थ ! हे परम हितैषी ! तुमसे ही कल्याण हमारा।
तुम्हें न पाकर व्यर्थ चला जाता, मानव का जीवन सारा॥
परम बंधु युग युग के योगी, महाबुद्ध हे अमर महात्मन्।
चूमे जो चरण तुम्हारे उसका, सफ़ल हुआ मानव तन॥
देव ! तुम्हारे दर्शन करके, लग जाता तुममें जिसका मन।
तुम्हें छोड़कर कहीं न जाता, तुम्हीं दीखते हो प्रियतम धन।
कितनों ने ही सीख लिया, मरकर जीने का मंत्र तुम्हारा॥
जाने कितने मुरझाये मुख, खिलते देखे तुमको पाकर।
सदा पीड़ितों की पुकार पर, रहे दौड़ते कष्ट उठाकर।
जो कि नहीं सुख देख मिला, वह देखा श्रीचरणों में आकर।
जो न कभी हो सका वही, हो गया तुम्हारा ध्यान लगाकर।
शरण ले लिया उसको जिसने, कभी हृदय से तुम्हें पुकारा॥
तुमको हमने दीनों दलितों, की कुटिया जाते देखा।
अपनी योग शक्ति से उनके, तुमको दुःख सुखाते देखा।
जो कि तुम्हें करना था उसमें, कभी न देर लगाते देखा।
तुमने उसकी सुनी दयामय, जिसको सबने ही दुत्कारा॥
निज तन मन का ध्यान न रखकर, तुमने पर उपकार किया है।
तुमने सदा बिना कुछ चाहे, प्राणिमात्र से प्यार किया है।
हे संघर्षातीत ! तुम्हींने, षट्रिपु का संहार किया है।
शरणागत डूबते हुए को, जब देखा तब तार दिया है।
भवसागर में पड़े जीव को, नाथ तुम्हींसे मिला किनारा॥

- पथिकजी महाराज

卐

प्रभु ! ऐसा मुझे ज्ञान दो

प्राणिमात्र का जिसमें कल्याण हो।
मेरे हाथों से दाता वो ही काम हो॥
पंचभूतों की है काया, जिसे माया ने नचाया।
इस काया का न कभी अभिमान हो॥
विषयों ने मन में डाला डेरा, बुद्धि को संशयों ने है घेरा।
फिर जीव से कैसे तेरा ध्यान हो॥
तू है जादूगर न्यारा, जिसने रचा जग सारा।
तेरी महिमा का कैसे बखान हो॥
तेरे रूप अनेक, फिर भी तू एक-का-एक।
सबमें देख पाऊँ तुम्हें, प्रभु ! ऐसा मुझे ज्ञान दो॥

- अशोक भाटिया

तीन प्रकार की सत्ताएँ

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

सत्ताएँ तीन प्रकार की होती हैं : १. व्यावहारिक सत्ता २. प्रातिभासिक सत्ता ३. पारमार्थिक सत्ता।

'यह गुलाब है, यह गाय है, यह मोहन है, यह सोहन है...' - पंचतत्त्वों से रचित जो कुछ भी दिखता है वह सब **व्यावहारिक सत्ता** के अंतर्गत है। जगत का लेना-देना, खाना-पीना, अपना-पराया आदि सब व्यवहारमात्र है, सदा नहीं रहता । अतः वह भी व्यावहारिक सत्ता के अंतर्गत ही आता है।

ठूँठे में चोर दिखना, रस्सी में सर्प दिखना, सीप में चाँदी दिखना, स्वप्न - ये सब **प्रातिभासिक सत्ता** के अंतर्गत आते हैं। मानों, स्वप्न में कुत्ते ने आपके पाँव में काटा और वहाँ से खून बह रहा है... यदि इस समय जाग्रत में कोई आपके पाँव पर दवाई लगा जाय तो उसका आपको कोई लाभ नहीं होगा। स्वप्न में स्वप्न का ही वैद्य या चिकित्सक चाहिए और स्वप्न में ही आराम चाहिए। स्वप्न भी सदा नहीं रहता, प्रतिभासमात्र है अर्थात् दिखनेभर को है। स्वप्न से जगे तो स्वप्न का सब कुछ गायब हो जाता है।

व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ताओं में 'मेरे-तेरे' का भेद बना रहता है, किंतु पारमार्थिक सत्ता में कोई भेद नहीं है। वास्तव में पारमार्थिक सत्ता के कारण ही व्यावहारिक और प्रातिभासिक, ये दोनों सत्ताएँ कार्य करती हैं। जो व्यवहार और स्वप्न से पहले था, जो व्यवहार और स्वप्न के समय रहता है और इन दोनों के बाद भी जो रहेगा, जिसका अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता - वही है **पारमार्थिक सत्ता**।

सारे भेद व्यावहारिक सत्ता में ही प्रतीत होते हैं। जड़ जड़ से, जीव जीव से, जीव जड़ से, जीव ईश्वर से, जड़ ईश्वर से भिन्न दिखता है किंतु वास्तव में ये भिन्न नहीं हैं।

'यह अपना आश्रम है... यह दूसरे का घर है...' ये हमारी व्यावहारिक कल्पनाएँ हैं। वास्तव में देखो तो हमारे घर की दीवार का सामान और दूसरे के घर की दीवार का सामान - ईंट, चूना आदि सब पृथ्वीतत्त्व का ही है। इनकी गहराई में कोई भेद नहीं है।

जीव-जीव में जो भेद दिखता है वह भी दिखनेभर को है। शरीर, मन और बुद्धि में भेद हो सकता है लेकिन उनको सत्ता देनेवाला चैतन्य परमात्मा सबमें एक-का-एक है।

जीव और ईश्वर में जो भेद दिखता है वह भी दिखनेभर को है। माया में आये हुए चैतन्य को ईश्वर कहते हैं और अंतःकरण अविच्छिन्न चैतन्य को जीव कहते हैं। ईश्वर की माया को वश में रखने की विशेषता को छोड़ दें और जीव की अविद्या के अधीन रहने की कमजोरी को छोड़ दें तो बाकी का जो है वह एक ही है - **आत्मा सो परमात्मा।**

किंतु जब तक इस बात को नहीं जानते, जब तक पारमार्थिक सत्ता का अनुभव नहीं होता, तब तक प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्ता का प्रभाव नहीं मिटता।

व्यवहार में कितनी भी प्रतिकूलताएँ आयें किंतु आपकी दृष्टि यदि पारमार्थिक है तो व्यवहार के दुःख आपको सता नहीं सकते।

प्रयाणकाल में भी यदि कोई इस प्रकार पारमार्थिक सत्ता का ही चिन्तन करे कि 'मेरी मौत नहीं होती... मौत शरीर पर आ रही है... शरीर प्राणशून्य हो रहा है... मैं उसे देख रहा हूँ...' तो वह मुक्त हो जाता है। यदि मौत के क्षण भी आपको यह पता चल जाय कि आप उसे देख रहे हैं तो आप मौत से पार अपने अमर आत्मा को जानकर मुक्त हो जायेंगे।

बात तो छोटी-सी है। यदि मनुष्य इस युक्ति का सहारा ले तो जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है, अन्यथा अरबों-खरबों रुपये देकर भी माता के गर्भ में उलटा लटकने के दुर्भाग्य से नहीं बच सकता। केवल सद्गुरु ही करुणा करके जीव को हँसते-हँसते जन्म-मरण से छूटने की रीत समझा सकते हैं।

समझे कोई विरला, कर ले बेड़ा पार...

आठवें अध्याय का माहात्म्य

भगवान शिव पार्वतीजी से कहते हैं : देवि ! अब आठवें अध्याय का माहात्म्य सुनो । उसे सुनने से तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी । लक्ष्मीजी के पूछने पर भगवान विष्णु ने उन्हें इस प्रकार अष्टम अध्याय का माहात्म्य बतलाया था ।

दक्षिण में आमर्दकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है । वहाँ भावशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसने वेश्या को पत्नी बनाकर रखा था । वह मांस खाता, मदिरा पीता, श्रेष्ठ पुरुषों का धन चुराता, परायी स्त्री से व्यभिचार करता और शिकार खेलने में दिलचस्पी रखता था । वह बड़े भयानक स्वभाव का था और मन में बड़े-बड़े हौसले रखता था । एक दिन मदिरा पीनेवालों का समाज जुटा था । उसमें भावशर्मा ने भरपेट ताड़ी पी, गले तक भर ली, जिसके फलस्वरूप अजीर्ण से अत्यंत पीड़ित होकर वह पापात्मा कालवश मर गया और बहुत बड़ा ताड़ का वृक्ष बना । उसकी घनी और ठंडी छाया का आश्रय लेकर ब्रह्मराक्षस-भाव को प्राप्त हुए कोई पति-पत्नी वहाँ रहा करते थे ।

उनके पूर्वजन्म की घटना इस प्रकार है । कुशीबल नामक एक ब्राह्मण था, जो वेद-वेदांग के तत्त्वों का ज्ञाता, सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ का विशेषज्ञ और सदाचारी था । उसकी स्त्री का नाम कुमति था । वह बड़े खोटे विचार की थी । वह ब्राह्मण विद्वान होने पर भी अत्यंत लोभवश अपनी स्त्री के साथ प्रतिदिन भैंस, कालपुरुष और घोड़े आदि बड़े दानों को लिया करता था; परंतु दूसरे ब्राह्मणों को दान में मिली हुई कौड़ी भी नहीं देता था । वे ही दोनों पति-पत्नी कालवश मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्मराक्षस हुए । वे भूख और प्यास से पीड़ित हो इस पृथ्वी पर घूमते हुए उसी ताड़ के वृक्ष के पास आये और उसके मूल भाग में विश्राम करने लगे । इसके बाद पत्नी ने पति से पूछा : 'नाथ ! हम लोगों का यह महान दुःख कैसे दूर होगा ? ब्रह्मराक्षस-योनि से किस प्रकार हमारी मुक्ति होगी ?' तब उसके पति ने कहा : 'ब्रह्मविद्या के उपदेश, अध्यात्म-तत्त्व के विचार और कर्मविधि के ज्ञान के बिना इस प्रकार के संकट से छुटकारा नहीं मिल सकता ।'

यह सुनकर पत्नी ने पूछा : 'किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम' (हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ?) उसकी पत्नी के इतना कहते ही जो आश्चर्यजनक घटना घटित हुई, उसको सुनो । उपरोक्त वाक्य गीता के आठवें अध्याय का आधा श्लोक था । उसके मुख से दैवात् ही यह निकल पड़ा था । इस श्लोक के श्रवण से वह वृक्ष उस समय ताड़ के रूप को त्यागकर भावशर्मा नामक ब्राह्मण हो गया । तत्काल ज्ञान होने से विशुद्धचित्त होकर वह पाप के चोले से मुक्त हो गया तथा इस आधे श्लोक के ही माहात्म्य से वे पति-पत्नी भी मुक्त हो गये । तदनंतर आकाश से एक दिव्य विमान आया और वे दोनों पति-पत्नी उस विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्गलोक को चले गये । वहाँ का यह सारा वृत्तान्त अत्यंत आश्चर्यजनक था ।

उसके बाद उस बुद्धिमान ब्राह्मण भावशर्मा ने आदरपूर्वक उस आधे श्लोक को लिखा और देवदेव जनार्दन की आराधना करने की इच्छा से वह मुक्तिदायिनी काशीपुरी में चला गया । वहाँ उस उदार बुद्धिवाले ब्राह्मण ने कठिन तपस्या आरम्भ की । उसी समय क्षीरसागर की कन्या भगवती लक्ष्मी ने हाथ जोड़कर देवताओं के भी देवता जगत्पति जनार्दन से पूछा : ''नाथ ! आप सहसा नींद त्यागकर खड़े क्यों हो गये ?''

श्रीभगवान बोले : देवि ! काशीपुरी में भागीरथी के तट पर बुद्धिमान ब्राह्मण भावशर्मा मेरे भक्तिरस से परिपूर्ण होकर अत्यंत कठोर तपस्या कर रहा है । वह अपनी इन्द्रियों को वश में करके गीता के आठवें अध्याय के आधे श्लोक का जप करता है । मैं उसकी तपस्या से बहुत संतुष्ट हूँ । बहुत देर से उसकी तपस्या के अनुरूप फल का विचार कर रहा था । प्रिये ! इस

समय वह फल देने को मैं उत्कण्ठित हूँ।

पार्वतीजी ने पूछा : भगवन् ! श्रीहरि सदा प्रसन्न होने पर भी जिसके लिए चिन्तित हो उठे थे, उस भगवद्‌भक्त भावशर्मा ने कौन-सा फल प्राप्त किया ?

श्रीमहादेवजी बोले : देवि ! द्विजश्रेष्ठ भावशर्मा प्रसन्न हुए भगवान विष्णु के प्रसाद को पाकर आत्यंतिक सुख (मोक्ष) को प्राप्त हुआ तथा उसके अन्य वंशज भी, जो नरक-यातना में पड़े थे, उसीके शुद्ध कर्म से भगवद्धाम को प्राप्त हुए। पार्वती ! यह आठवें अध्याय का माहात्म्य थोड़े में ही तुम्हें बताया है। इस पर सदा विचार करते रहना चाहिए।

('पद्म पुराण' से)

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के आठवें अध्याय के कुछ श्लोक

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्‌भावभावितः॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है। (६)

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्त से निरंतर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है। (८)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरंतर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है, उस नित्य-निरंतर मुझमें युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ। (१४)

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

हे पार्थ ! जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्व भूत हैं और जिस सच्चिदानंदघन परमात्मा से यह समस्त जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है। (२२)

आत्म-अमृत

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है कि 'जैसे रूई के फाहे को अग्नि लगे और ऊपर से तीव्र पवन चले तो यह नहीं जाना जाता कि वह कहाँ जाकर पड़ा। वैसे ही जगतरूपी रूई का फाहा ज्ञानाग्नि से दग्ध करके वैराग्यरूपी पवन से जब उड़ाया जाता है तब नहीं जाना जाता कि वह कहाँ जाकर पड़ा।'

संसार की तू-तू, मैं-मैं, सुख-दुःख, चिन्ता-परेशानी को ज्ञान की अग्नि लगा दें और वैराग्यरूपी पवन से उड़ा दें तो समझो जगत की सब परेशानियाँ खत्म हो गयीं। नहीं तो जगत की परेशानियों का चिन्तन कर-करके लोग पागल जैसे हो जाते हैं। देखने में तो 'जेंटलमेन' - सभ्य लगते हैं किंतु भीतर से खोखले हो जाते हैं। ऐसा कौन है जिसको जगत ने पूरा सुख दिया हो ?

'हे रामजी ! दुःख देखना है तो संसार में जाओ। गृहस्थी लोग बेचारे बहुत दुःखी हैं। कभी किसी चिन्ता से ग्रस्त हैं तो कभी किसी दुःख से। जैसे सूर्य-चन्द्र को राहु-केतु पीड़ित करते हैं, ऐसे ही संसारियों को मिथ्या सुख-दुःख पीड़ित करते रहते हैं।

हे रामजी ! जीव को अज्ञानरूपी भूत लगा है। इसीसे उन्मत्त होने से उसे स्वप्नतुल्य जगत सत्य प्रतीत होता है और जगत के सत्य प्रतीत होने से नाना प्रकार की वासनाएँ दृढ़ होती हैं। इससे जीव दुःख पर दुःख पाता है।'

जो सत् है वह अज्ञान के कारण हमें दिखता नहीं और असत् शरीर ही सत् होकर भासता है। जो चैतन्य है, हम उसका आनंद लेते नहीं, केवल जड़ वस्तुओं से ही मजा लेने का प्रयास करते हैं।

जो आनंदस्वरूप है उस सत्य का पता नहीं है और नकली सुख के पीछे भाग रहे हैं।

अज्ञानरूपी भूत ने सब उलटा दिखा दिया है। बालक अपनी ही परछाईं को पकड़ने जाता है। ज्यों पकड़ने जाता है त्यों वह दूर भागती है। आखिर वह थककर बैठ जाता है। फिर माँ उसका हाथ पकड़कर उसीके सिर पर रख देती है तो वह खुश हो जाता है कि 'पकड़ ली, पकड़ ली।'

इतनी देर से मेहनत कर रहा था तो पकड़ में नहीं आ रही थी। केवल उसके हाथ को सिर पर रख दिया तो मिली-मिलायी थी। ऐसे ही हम भी सुख के लिए भागते फिरते हैं, थक जाते हैं, गिर पड़ते हैं लेकिन जिसकी सत्ता से भागते, थकते, गिरते हैं वह सच्चिदानंद 'सोऽहंस्वरूप' ही अपना-आपा है। इतना आसान है सुखस्वरूप का ज्ञान।

एक विचार उठा, दूसरा उठने को है, इन दोनों के बीच की अवस्था परमात्म-अवस्था है। श्वास भीतर गया और बाहर आया। दोनों के बीच की जो अवस्था है वह भी चैतन्य की शुद्ध अवस्था है। कितना आसान है ! ऐसा सर्वेश्वर साथ में है फिर भी मनुष्य दुःखी है।

नौकरानियाँ क्या सुख देंगी ? घर-बार क्या सुख देगा ? पैसे क्या सुख देंगे ? पैसे तो काम में आते नहीं, पैसे देकर जो वस्तुएँ लाते हैं वे काम में आती हैं। वस्तुएँ जिस शरीर के काम आती हैं वह शरीर भी एक दिन तो जला ही देना है। फिर सारा जीवन क्या बहादुरी की ?

आप केवल अपनी नजर बदल दें तो नजारे बदल जायेंगे, भैया !

परमात्मा परोक्ष तो है ही नहीं। तरंग यदि बोले कि मुझे पानी का साक्षात्कार करना है तो कैसे होगा ? तरंग पानी को पहचान ले। ऐसे ही जगत के तू-तू, मैं-मैं से हटकर जगदीश्वर को पहचान लें। सब दुःखों का अंत इसीमें है।

केवल एक आत्मदृष्टि ही सबसे श्रेष्ठ है जिसे पाने से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं और परम पद प्राप्त होता है। जगत की दृष्टि रखो तो कितनी भी सुविधाएँ हों किंतु अंत में मृत्यु सब छीन लेती है। परंतु यदि आत्मदृष्टि हो तो आत्मा की तो मृत्यु होती ही नहीं है।

संसार के सुख-दुःख क्षणिक हैं। संसार के हानि-लाभ क्षणिक हैं किंतु ये उसीको प्रभावित करते हैं जो संसार को सत्य मानता है। जिसकी दृष्टि आत्मदृष्टि हो गयी है, जो आत्मविचार से सम्पन्न हो गया है, उसकी गहराई में कोई भी दुःख नहीं टिकता। जैसे, सागर की गहराई में तरंगें नहीं हैं, ऊपर-ऊपर ही दिखती हैं, ऐसे ही ज्ञानी पर व्यवहार का प्रभाव ऊपर-ऊपर से ही दिखता है, गहराई में कुछ नहीं।

जैसे आकाश में पक्षी उड़ान भरते हैं तो उसका कोई चिह्न नहीं रहता। पानी में मछलियाँ चलती हैं तो उसका भी कोई चिह्न नहीं बनता। ऐसे ही आत्मदृष्टिवाले की कोई आसक्ति या पकड़ नहीं होती। **धीरा की गति धीरा जाने...**

'हे रामजी ! ज्ञानवान सदा सम सत्ता को प्राप्त होते हैं और सदा आनंद से पूर्ण रहते हैं। ज्ञानवान जो कुछ क्रियाएँ करते हैं, वह सब उनका मनोविनोदमात्र है। सारा जगत उनके लिए आनंदरूप है।'

शरीररूपी रथ है जिस पर जीवात्मा बैठा है व इन्द्रियरूपी अश्व हैं। बुद्धिरूपी सारथी मनरूपी रस्सी से उन्हें चलाता है। इन्द्रियरूपी अश्व अज्ञानियों को गलत मार्ग में डाल देते हैं। ज्ञानवान के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसे हैं कि वे जहाँ भी जाते हैं, वहीं आनंद पाते हैं। भेद किसी ठौर नहीं पाते।

'हे रामजी ! इसी आत्मदृष्टि का आश्रय करो, जिससे तुम्हारा हृदय भी पुष्ट हो। फिर वह संसार के इष्ट-अनिष्ट से चलायमान न होगा। यह जो मैंने अमृतरूपी वृत्ति कही है उसको तब जानोगे जब तुमको भी ब्रह्म का साक्षात्कार होगा।'

आत्मा-परमात्मा को जानकर तृप्त रहने की वृत्ति को अमृतरूपी वृत्ति कहा है। जब आप अभ्यास करके आत्मा को जानोगे तब पता चलेगा कि वह कैसा अमृत है ! देवताओं का अमृत पुण्य क्षीण करता है और जगत के विषय-विकार भोक्ता को ले डूबते हैं। किंतु यह आत्मा का अमृत तो भगवान को भी आकर्षित कर देता है। ब्रह्माजी, भगवान नारायण और शिवजी भी इसी आत्म-अमृत में तृप्त रहते हैं।

वही आत्म-अमृत, आत्मसुख ब्रह्मज्ञानी गुरुओं के द्वारा मिलता है। वह कितनी ऊँची चीज

है ! उसे पाने के लिए एक-दो दिन, एक-दो साल तो क्या पूरा जीवन भी लग जाय, अरे ! जीवन के अंत में भी मिल जाय तो भी फायदा-ही-फायदा है। अभी भी इसकी एकाध झलक मिलती है तो आप कितने आनंद में रहते हैं। शिविर में हम ब्रह्मज्ञानरूपी सरोवर की केवल एक बूँद का उपयोग करते हैं तो भी सब मौज में आ जाते हैं... यदि वह पूरा मिल जाय तो कहना ही क्या ?

जगत पूरा किसीको नहीं मिलता लेकिन परमात्मा मिलता है तो पूरा मिलता है। बस, टिके रहना चाहिए। जैसे पानी का तापमान १०० डिग्री सेंटिग्रेड तक पहुँचता है तब वह वाष्पीभूत होता है, ऐसे ही आप श्रद्धा और अभ्यास को १०० डिग्री तक पहुँचा दो। फिर देखो...

पूँजी बढ़ाओ

तीन व्यापारी थे। तीनों एक जैसी पूँजी लेकर व्यापार करने निकले। उनमें से एक पूँजी बढ़ाकर लौटा। दूसरा पूँजी की रक्षा करता हुआ उतनी ही पूँजी लेकर लौटा और तीसरा ठनठनपाल होकर वापस आया।

ऐसे ही इस धरती पर जीवरूपी व्यापारी आते हैं। जो सत्संग, सत्कर्म और सदाचरण करते हैं, सतर्क रहते हैं तथा समय का दुरुपयोग नहीं करते, वे जप-तप, दान, सेवा द्वारा अपनी साधनारूपी पूँजी बढ़ाते हैं, संसार से कुछ कमाकर जाते हैं।

दूसरे वे हैं, जो कुछ सत्कर्म भी करते हैं और कुछ बुरे कर्म भी करते हैं, वे कुछ जमा, कुछ उधार करते-करते, मानवता की जितनी पूँजी लेकर आये थे, उतनी ही लेकर जाते हैं। जबकि तीसरे वे अभागे हैं जो किसीकी निंदा करके, सत्कृत्यों में विघ्न डालकर, शराब-कबाब आदि में मशगूल होकर मनुष्यता से भी नीचे आ जाते हैं, पाशविक आचरण करने लग जाते हैं। फिर मानवतारूपी पूँजी से ठनठनपाल होकर नरकों में जाते हैं। चौथे वे होते हैं जो मानवता की पूँजी को बढ़ाते-बढ़ाते 'पुण्य का कर्ता कौन ? सुख-दुःख का भोक्ता कौन ?' यह जानकर आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पाते हैं और जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

हे साधक ! तुम जो पूँजी लेकर आये हो उसको बढ़ाकर ले जाने का यत्न करना। मानवता के सद्गुणों को विकसित करने का यत्न करना।
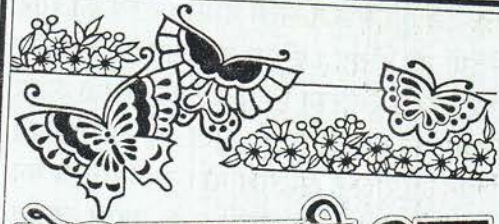
अपने दुःख में रोनेवाले, मुस्कराना सीख ले।
दूसरों के दुःख दर्द में, तू आँसू बहाना सीख ले॥

अपने दुःख में तो सब रोते हैं। दूसरों के दुःख को जो अपना दुःख नहीं समझता, उसका दुःख भी दूर नहीं होता। जब तक हम दूसरे के सुख को अपना सुख नहीं समझते, तब तक हमारे हृदय में सुखस्वरूप हरि प्रकट नहीं होते।

* शत्रु को नीचा दिखाने के लिए द्वेषी काम करते हैं। वाहवाही पाने के लिए लोभी काम करते हैं, समाज की झूठी वाहवाही के लिए कितने ही अहंकारी काम में परेशान रहते हैं लेकिन जो भगवान को प्रसन्न करने के लिए काम करते हैं, वे निष्काम कर्म करनेवाले धन्य हो जाते हैं।

*** ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥

'हे अर्जुन ! शरीररूपी यंत्र पर आरूढ़ हुए सब प्राणियों को अंतर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।' **(गीता : १८.६१)**

* ईश्वर सबके हृदय में बैठा है। जैसे विद्युत का करंट मोटर में जाता है। प्रत्येक पुर्जा जो कि मशीन में घूम रहा होता है, उसमें जो आंदोलन है वह विद्युत का ही प्रसाद है। विद्युत को कोई नहीं देखता, सब मशीन को ही देखते हैं, मोटर को घूमते हुए देखते हैं क्योंकि घुमानेवाले तत्त्व को आदमी आँखों से नहीं देख सकता। फिर भी घुमानेवाला तत्त्व ही सब काम करता है। ऐसे ही अपने हृदय, इन्द्रिय, मन तथा तन सबको शक्ति देनेवाला परमात्मा सब कुछ देख रहा है। तुम बुरे काम करो तो लोग चाहे उस समय तुम्हें न फटकारें पर अंतर्यामी तो देख रहा है न ! वह देर-सवेर तुम्हें उसका फल अवश्य देता है।

✲ वेद का सार है सत्य वचन। सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम। संयम का सार है दान और दान का सार है तपस्या। तपस्या का सार है त्याग और त्याग का सार है सुख। सुख का सार है स्वर्ग और स्वर्ग का सार है आत्मशांति। अतः मनुष्य को संतोषपूर्वक रहकर आत्मशांति के उत्तम उपाय सत्त्वगुण को अपनाने की कामना करनी चाहिए।

✲ जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर सदा सब प्रकार से परमात्मा में लगे रहते हैं वह वेदाध्ययन, तप और त्याग इन सबके फल को पा लेता है। क्रोधी और निगुरे मनुष्य जो दान देते हैं, यज्ञ, तप अथवा हवन करते हैं उनके उन सब कर्मों के फल को यमराज हर लेते हैं। उनका किया हुआ वह सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

✲ सच्चाई से ईश्वरप्रीत्यर्थ सेवा करनेवाले साधक के हृदय में 'आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? हम कर्म करनेवाले कौन हैं ?' इस प्रकार के दिव्य प्रश्न अपने-आप उत्पन्न होते हैं।

✲ परमात्मा सत् है, चेतन है यह तो बुद्धिपूर्वक दिखता है लेकिन आनंदस्वरूप की मिठास तो हृदय में जितना निष्काम भाव से भरकर कर्म होता है, उतना उस आत्मा का आनंद अपने ही दिल में छलकता है, खुद के अनुभव में आता है।

✲ अपनी अखण्डता और पूर्णता का ज्ञान गुरु के बिना जगता नहीं। देवता आ जायें और मनोवांछित फल भी दे दें, मगर अखण्ड के ज्ञान का उपदेश देकर आत्मा-परमात्मा का भेद मिटाने का काम तो सद्‌गुरु ही कर सकते हैं।

✲ सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ है अपना अंतर्मुख, आत्माकार वृत्तिवाला मन। हमारा चित्त जितना पवित्र और निर्दोष होता है उतना ही हमें तीर्थ में जाने का भी लाभ होता है। अपने मन के पवित्र होने पर तीर्थों में जायेंगे तो महापुण्य होगा। मन पवित्र नहीं है तो तीर्थ में जाने का पूरा लाभ नहीं होता।

✲ अपवित्र मनवाला शंकाशील मनुष्य घृणा से युक्त होकर सत्संग में बढ़िया-से-बढ़िया बात सुनेगा तो भी उसको रंग नहीं लगेगा। पवित्र मनवाला मनुष्य महापुरुषों के पास जाते ही तत्त्वज्ञान में पहुँच सकता है।

साधनास्थली : मौनमंदिर

एकान्तवासो लघुभोजनादौ मौनं निराशा करणावरोधः।
मुनेरसोः संयमनं षडेते चित्तप्रसादं जनयन्ति शीघ्रम्॥

'एकांत में रहना, अल्पाहार, मौन, कोई आशा न रखना, इन्द्रियसंयम और प्राणायाम - ये छः साधन मुनि को शीघ्र ही चित्त के प्रसाद की प्राप्ति कराते हैं।'

आज तक जितने भी महापुरुष एवं महान विभूतियाँ हुई हैं, उन्होंने अपने जीवन में मौन, एकांतसेवन, जप-ध्यान-धारणा एवं समाधि को विशेष महत्त्व दिया है।

भगवान श्रीकृष्ण १३ वर्ष तक घोर अंगिरस ऋषि के आश्रम में मौन का अवलंबन लेकर एकांतवास में रहे। उसके बाद युद्ध के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा उपनिषदों के साररूप में जो कुछ कहा गया, उससे 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का प्राकट्य हुआ।

इसी प्रकार एक बार जैमिनि ऋषि एकांत कुटी में चले गये और भीतर से द्वार बंद कर लिया। सातवें दिन जब द्वार खुला तो नवीन दर्शन 'पूर्व मीमांसा' की रचना हो चुकी थी।

राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम) ७ वर्ष मौनपूर्वक एकांतवास में रहे तो बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये। वर्धमान १२ वर्ष मौन एवं एकांत साधना में संलग्न रहे तो भगवान महावीर होकर पूजे गये। स्वयं भगवान शिव भी अधिकतर एकांत में समाधिस्थ रहते हैं।

रमण महर्षि ५३ वर्ष अरुणाचलम् में रहे। इस बीच उन्होंने अनेकों वर्ष एकांत में मौन रहकर व्यतीत किये तथा समाधि में निमग्न रहे।

उत्तर काशी में कृष्णबोधाश्रम नामक महापुरुष ने मौन व एकांतसेवन कर साधनामय जीवन बिताया और बड़े प्रसिद्ध हो गये ।

उत्तर काशी और नैनीताल के भयानक अरण्यों में पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज भी वर्षों तक अज्ञात एकांत में आत्मयात्रा करते हुए, निजानंद की मस्ती में विचरते रहे ।

पूज्यश्री भी १७ वर्षों तक एकांतवास में रहे और अभी भी कभी-कभी एकांतवास में चले जाते हैं ।

सभी संत-महापुरुष बड़े एकांतप्रेमी होते हैं । जिन्हें एकांत में परमात्मा का ध्यान करने की कला आ गयी, जिन्होंने जीवन का मूल्य जान लिया है, वे व्यर्थ के सांसारिक झमेलों में पड़कर अपना आयुष्य बरबाद करना पसंद नहीं करते । ऐसे लोग व्यवहार तो कुशलता से निभाते हैं परंतु सदा एकांत में जाने को उत्सुक रहते हैं ।

एकांत में सात्त्विक अल्पाहार, उपनिषदों का अध्ययन हमारे मन की सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करता है और विचारों को उचित दिशा प्रदान करता है । रजोगुणी और मनमुखी व्यक्ति के लिए एकांत खतरा पैदा कर सकता है जबकि साधना, संयम और सद्गुरु-प्रेरणा का आश्रय लेनेवाले के लिए एकांत हितकारी है । एकांत के साथ अगर मौन का भी अवलम्बन हो तो वह एकांत से मिलनेवाली शक्ति को और अधिक बढ़ा देता है ।

स्वामी शिवानंदजी कहते हैं कि 'छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार वाणी तेजोमय है । वाणी का निर्माण अग्नि के स्थूल भाग, हड्डी के मध्य भाग तथा मज्जा के सूक्ष्म भाग से होता है । अतः वाणी बड़ी शक्तिशाली है ।'

मौन से शक्ति की सुरक्षा, संकल्पबल में वृद्धि तथा वाणी के आवेगों पर नियंत्रण होता है । सत्य के अभ्यास तथा क्रोध के दमन में यह बहुत ही सहायक है ।

मौन के समय आप अंतर्निरीक्षण तथा आत्मविश्लेषण अच्छी तरह कर सकते हैं, अपने विचारों को सूक्ष्मता से देख सकते हैं ।

जो पतंगे की तरह इधर-उधर भटकते रहते हैं एवं व्यर्थ की बकबक करते रहते हैं, उनके चित्त में न शांति होती है न क्षमा, न विचारशक्ति होती है न ही अनुमानशक्ति । वैखरी वाणी और मन की कल्पनाएँ शक्ति को क्षीण करती हैं और बुद्धि को ब्रह्मज्ञान में टिकने नहीं देतीं ।

रोज संकल्प करें कि 'बिनजरूरी नहीं बोलूँगा, जितना हो सके कम बोलूँगा, मौन रहूँगा ।' वाणी के मौन से मनुष्य बहुत सारे पापों और दोषों से बच जाता है ।

बोलने से व्यक्ति बलात् चंचल बनता है । मौन से चंचलता मिटती है । मौन रहने से यम-नियम, तितिक्षा, उपरति आदि सद्गुण अपने-आप आने लगते हैं । एकांत में मौन का अभ्यास और उपवास रोग तथा थकान को मिटा देते हैं ।

जिसके जीवन में निम्न ६ सद्गुण हैं वह सारे विश्व पर राज्य कर सकता है, उसका संकल्प सारे विश्व को हिला सकता है ।

(१) वाणी के आवेग को रोकना ।
(२) मन के आवेग को रोकना ।
(३) क्रोध के आवेग को रोकना ।
(४) उदर के आवेग (पेट की भूख) को रोकना ।
(५) काम के आवेग को रोकना ।
(६) चटोरेपन (स्वाद) के आवेग को रोकना ।

श्री उड़िया बाबाजी ने कहा है : 'अधिक सोना, अधिक बोलना और अधिक खाना - ये ३ बातें अधिकतर संसारी पुरुषों में होती हैं । यदि ये तीन बातें छोड़ दी जायें और अन्य कोई साधन न भी किया जाय तो भी सत्त्वगुण आ जायेगा ।'

हृदय शुद्ध रहे ऐसा आहार-विहार और चिन्तन करना चाहिए । कहा भी गया है कि **जैसा खाओ अन्न, वैसा बने मन ।** साधक को अपने आहार पर खूब ध्यान देना चाहिए । 'आहार' शब्द केवल भोजन के लिए नहीं है वरन् आँखों से, कानों से, नाक से तथा त्वचा से जो भी ग्रहण किया जाता है वह आहार के ही अंतर्गत आता है । अतः उसमें सात्त्विकता का ध्यान रखना चाहिए ।

जगद्गुरु आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है : **आहार्यन्ते इति आहारः ।** हम जो बाहर से भीतर ग्रहण करते हैं उसका नाम आहार है । अतः अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा लिये जानेवाले आहार के प्रति भी

सजग रहें, सावधान रहें।

प्रतिदिन शुद्ध वायु में, सात्त्विक वातावरण में ८-१० प्राणायाम करने ही चाहिए। यदि त्रिबंध के साथ प्राणायाम करें तो बहुत अच्छा है। प्राणायाम अर्थात् प्राणों के आयाम का नियमन, प्राणों की विधिवत् तालबद्धता। प्राणायाम करने से प्राण तालबद्ध होकर सूक्ष्म होने लगेंगे। मन के दोष दूर होने लगेंगे। इससे शरीर में विद्युत्तत्त्व बढ़ेगा और शरीर निरोग रहेगा।

साधना में शीघ्र प्रगति के लिए ईश्वरप्रीति, एकांतवास, धारणा-ध्यान का अभ्यास, शास्त्रविचार एवं महापुरुषों का संग - ये सभी अनिवार्य हैं।

एकांत में विचरण करना, कुछ दिनों के लिए अकेले ही किसी कमरे में मौन रहकर धारणा-ध्यान का अभ्यास करना साधना में सफलता पाने के लिए परम लाभकारी हैं।

वेदान्त की बातें सुनकर जो एकांतवास तथा धारणा-ध्यान की अवहेलना करता है, उसके पास केवल कोरी बातें ही रह जाती हैं। लेकिन जिन्होंने वेदान्त को सुनकर एकांत में उसका मनन करते हुए निदिध्यासन की भूमिका हासिल की है, वे साधक सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

मौन, जप, उचित आहार-विहार, एकांत-सेवन एवं आत्मविचार अंतर्मुखता लाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जिन्होंने भी लोकसंपर्क से दूर रहकर अज्ञात स्थान में एकांतसेवन किया और वहाँ अल्पाहार का आश्रय लेकर मौन, जप, ध्यान और योग के बल से अपनी जीवनशक्ति को विकसित करके जीवनदाता को, नित्य ज्ञान, नित्य प्रेम और नित्य आत्मसुख को पाने का प्रयत्न किया, वे महापुरुष हो गये।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२८वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जून २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

गंगा की महिमा

[गंगा जयंती : ९ जून २००३]

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

कपिल मुनि के कोप से सगर राजा के पुत्रों की मृत्यु हो गयी। राजा सगर को पता चला कि उनके पुत्रों के उद्धार के लिए माँ गंगा ही समर्थ हैं। अतः गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए सगर के पौत्र अंशुमान, अंशुमान के पुत्र दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ घोर तपस्या में लगे रहे। आखिरकार भगीरथ सफल हुए गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने में। इसलिए गंगा का एक नाम 'भागीरथी' भी है। जिस दिन गंगा पृथ्वी पर अवतरित हुईं वह दिन 'गंगा दशहरा' के नाम से जाना जाता है।

जगद्गुरु आद्य शंकराचार्यजी, जिन्होंने कहा है : **एको ब्रह्म द्वितियोनास्ति। द्वितियाद्वैत भयं भवति॥** उन्होंने भी 'गंगाष्टक' लिखा है, गंगा की महिमा गायी है। रामानुजाचार्य, रामानंद स्वामी, चैतन्य महाप्रभु और स्वामी रामतीर्थ ने भी गंगाजी की बड़ी महिमा गायी है। कई साधु-संतों, अवधूत-मंडलेश्वरों और जती-जोगियों ने गंगा माता की कृपा का अनुभव किया है, कर रहे हैं तथा बाद में भी करते रहेंगे।

अब तो विश्व के वैज्ञानिक भी गंगाजल का परीक्षण कर दाँतों तले उँगली दबा रहे हैं! उन्होंने दुनिया की तमाम नदियों के जल का परीक्षण किया परंतु गंगाजल में रोगाणुओं को नष्ट करने तथा आनंद और सात्त्विकता देने का जो अद्भुत गुण है, उसे देखकर वे भी आश्चर्यचकित हो उठे।

हृषिकेश में स्वास्थ्य-अधिकारियों ने पुछवाया कि यहाँ से हैजे की कोई खबर नहीं आती, क्या

कारण है ? उनको बताया गया कि यहाँ यदि किसीको हैजा हो जाता है तो उसको गंगाजल पिलाते हैं। इससे उसे दस्त होने लगते हैं तथा हैजे के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वह स्वस्थ हो जाता है। वैसे तो हैजे के समय घोषणा कर दी जाती है कि पानी उबालकर ही पियें। किंतु गंगाजल के पान से तो यह रोग मिट जाता है और केवल हैजे का रोग ही मिटता है ऐसी बात नहीं है, अन्य कई रोग भी मिट जाते हैं। तीव्र व दृढ़ श्रद्धा-भक्ति हो तो गंगास्नान व गंगाजल के पान से जन्म-मरण का रोग भी मिट सकता है।

सन् १९४७ में जलतत्त्व विशेषज्ञ कोहीमान भारत आया था। उसने वाराणसी से गंगाजल लिया। उस पर अनेक परीक्षण करके उसने विस्तृत लेख लिखा, जिसका सार है - 'इस जल में कीटाणु-रोगाणुनाशक विलक्षण शक्ति है।'

दुनिया की तमाम नदियों के जल का विश्लेषण करनेवाले बर्लिन के डॉ. जे. ओ. लीवर ने सन् १९२४ में ही गंगाजल को विश्व का सर्वाधिक स्वच्छ और कीटाणु-रोगाणुनाशक जल घोषित कर दिया था।

'आइने अकबरी' में लिखा है कि 'अकबर गंगाजल मँगवाकर आदरसहित उसका पान करते थे। वे गंगाजल को अमृत मानते थे।' औरंगजेब और मुहम्मद तुगलक भी गंगाजल का पान करते थे। शाहनवर के नवाब केवल गंगाजल ही पिया करते थे।

कलकत्ता के हुगली जिले में पहुँचते-पहुँचते तो बहुत सारी नदियाँ, झरने और नाले गंगाजी में मिल चुके होते हैं। अंग्रेज यह देखकर हैरान रह गये कि हुगली जिले से भरा हुआ गंगाजल दरियाई मार्ग से यूरोप ले जाया जाता है तो भी कई-कई दिनों तक वह बिगड़ता नहीं है। जबकि यूरोप की कई बर्फीली नदियों का पानी हिन्दुस्तान लेकर आने तक खराब हो जाता है।

अभी रुड़की विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक कहते हैं कि 'गंगाजल में जीवाणुनाशक और हैजे के कीटाणुनाशक तत्त्व विद्यमान हैं।'

एक बार मैंने गंगोत्री से गंगाजल भरा। उसके बाद मैं आबू गया। आबू की गुफा में रहकर मैं साधना करता था, वहाँ दो-तीन वर्षों के बाद भी उस जल में कोई काई या जीवाणु नहीं दिखे। पानी एकदम साफ-स्वच्छ रहा।

फ्रांसीसी चिकित्सक हेरल ने देखा कि गंगाजल से कई रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर उसने गंगाजल को कीटाणुनाशक औषधि मानकर उसके इंजेक्शन बनाये और जिस रोग में उसे समझ न आता था कि इस रोग का कारण कौन-से कीटाणु हैं, उसमें गंगाजल के वे इंजेक्शन रोगियों को दिये तो उन्हें लाभ होने लगा !

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

(श्रीरामचरित. अयो. कां. : ८६.२)

सभी सुखों को देनेवाली और सभी शोक व दुःखों को हरनेवाली माँ गंगा के तट पर स्थित तीर्थों में पाँच तीर्थ विशेष आनंद-उल्लास का अनुभव कराते हैं : गंगोत्री, हर की पौड़ी (हरिद्वार), प्रयागराज त्रिवेणी, काशी और गंगासागर। गंगा दशहरे के दिन गंगा में गोता मारने से सात्त्विकता, प्रसन्नता और विशेष पुण्यलाभ होता है।

गीता प्रश्नोत्तरी

४१. परमेश्वर-प्राप्ति का सुगम मार्ग क्या है ?
४२. परमेश्वर का सर्वव्यापी स्वरूप ज्ञान किस चीज से होता है ?
४३. निष्काम बुद्धि से क्या प्राप्त होता है ?
४४. मन पर विजय कैसे पाया जा सकता है ?
४५. वर्णसंकर किसे कहते हैं ?
४६. वर्णसंकर होने से क्या होता है ?
४७. गीता के अनुसार अविनाशी तत्त्व क्या है ?
४८. गीता के अनुसार नाशवान चीज क्या है ?
४९. ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसको शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकती ?
५०. क्षत्रियों का धर्म क्या है ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर : ३१. अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी। (चार प्रकार के) ३२. सहस्र युग ३३. छः महीने ३४. शुक्ल पक्ष ३५. चार ३६. सामवेद ३७. शंकरजी को ३८. सुमेरु पर्वत ३९. ऐरावत (हाथी) ४०. माया के रूप में।

चित्त की शुद्धि

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

चित्त की शुद्धि सभी सद्‌गुणों एवं सभी सामर्थ्यों का मूल है और चित्त को शुद्ध करना आपके हाथ की बात है । चित्त की अशुद्धि सभी दुःखों, सभी विफलताओं, सभी पापों, यहाँ तक की जन्म-मरण का भी मूल है ।

चित्त अशुद्ध होता है अहंभाव को महत्त्व देने से । जो अपनी इच्छा-वासना की पूर्ति के लिए कुछ भी करना पड़े तो कर लेता है, ऐसे व्यक्ति का चित्त रावण और कंस की नाईं अशुद्ध हो जाता है । किंतु 'अपने भोग भोगने में किसीका बलिदान तो नहीं होता ?' - इस प्रकार का विचार करनेवाले का चित्त शुद्ध होता है ।

चित्त की अशुद्धि अपना बनाया हुआ दोष है । अपनी बनायी हुई वासना की पूर्ति से अशुद्धि होती है । अपनी वासना की पूर्ति के लिए अंधी दौड़ लगाने से चित्त अशुद्ध होता है । वासना मिटने पर चित्त शुद्ध होता है । ज्यों-ज्यों शुद्धि बढ़ती है, त्यों-त्यों चित्त में सामर्थ्य आता है, सद्‌गुण बढ़ते हैं ।

चित्त की अशुद्धि किन कारणों से होती है ?

चित्त अशुद्ध होता है अशुद्ध खान-पान और अनुचित व्यवहार से ।

लोग अपना स्नानगृह गंदा नहीं रखना चाहते किंतु हेराफेरी की बातों से, दूसरों को लड़ाने-भिड़ाने की बातों से अपना चित्त अशुद्ध कर लेते हैं ।

अपनी योग्यता का दुरुपयोग करने से चित्त अशुद्ध होता है । जैसा व्यवहार आपको अपने लिए अच्छा नहीं लगता, वैसा दूसरों के साथ न करें । क्या आपको अच्छा लगता है कि कोई आपको उल्लू बनाये, आपकी निन्दा करे ? नहीं । तो आप भी दूसरों को उल्लू न बनायें, दूसरों की निन्दा न करें । यदि आप निन्दा करते हैं तो यह आपके चित्त की अशुद्धि है और यदि ऐसा नहीं करते तो चित्त की शुद्धि है ।

गलत काम करके, किसीसे बुरा व्यवहार करके आपके हृदय में पीड़ा नहीं होती तो समझ लो कि चित्त बहुत अशुद्ध है ।

लोग भगवान की पूजा करते हैं लेकिन वास्तव में भगवान नहीं पूजे जाते, भगवान का आदर नहीं होता, भगवान के सद्‌गुणों का आदर होता है । भगवान का आदर करना हो तो भगवान तो सर्वत्र हैं : जल-थल में, चोर-डाकू में, किंतु इनका कहाँ आदर करते हैं आप ? जिनमें भगवान के गुण विकसित हुए हैं उन संत का आदर करते हैं, सज्जन का आदर करते हैं ।

चित्त में शांति न होना, खुशी न होना, रस न आना, जरा-जरा बात में चिन्ता आना, जरा-जरा बात में तनाव में आ जाना - ये सब चित्त की अशुद्धि के लक्षण हैं । अशुद्ध चित्त में निर्दोष हास्य नहीं आता, स्वाभाविक खुशी नहीं होती ।

अपने आत्मा-परमात्मा में शांति न पाना - यह अशुद्ध चित्त का लक्षण है । वर्तमान परिस्थितियों में नीरसता लगना और भविष्य में सुख खोजने के लिए दौड़ना यह चित्त की अशुद्धि है ।

सुनी हुई, देखी हुई, की हुई बुराई के आधार पर सदा के लिए किसीको बुरा मान लेना आपके चित्त को अशुद्ध बनायेगा । किसीकी बुराई के प्रति हमेशा के लिए गाँठ बाँधकर उस बुराई का चिन्तन करने से हम स्वयं बुरे होने लगते हैं ।

अपने दोषों की पहचान यह निर्दोष होने का उत्तम साधन है । अपने दोषों की सफाई देते रहना चित्त की अशुद्धि का लक्षण है । गलती बताने पर जो तुरंत सफाई देते हैं, उनके चित्त को शुद्ध होने में बहुत समय लगता है । **अपनी गलती बतानेवाले**

के प्रति अहोभाव के बदले द्वेष होना अशुद्ध चित्त का लक्षण है।

'इसने क्या किया ? उसने क्या किया ? फलाना। ऐसा है...' - ऐसा व्यर्थ का चिन्तन करना चित्त की अशुद्धि का लक्षण है। जो कर्म करने में सावधान नहीं रहता, उसका चित्त अशुद्ध रहता है।

संयोग की दासता और वियोग के भय से भी चित्त अशुद्ध होता है। 'ऐसा नहीं होगा तो मेरा क्या होगा ? यह छूट जायेगा तो मेरा क्या होगा ?' - इस प्रकार के चिन्तन से वर्तमान का अनादर होता है और चित्त अशुद्ध बनता है।

झूठ-कपट से चित्त अशुद्ध होता है। परमात्मा सत्यस्वरूप हैं। झूठ बोलनेवाले को भगवत्प्राप्ति तो दूर रही बल्कि इसकी रुचि भी नहीं होती। कामी अथवा क्रोधी को परमात्मा मिल सकते हैं क्योंकि काम-क्रोध तो आवेग हैं, स्वाभाविक ही आते हैं और आकर चले जायेंगे किंतु झूठ-कपट तो व्यक्ति जानबूझकर करता है।

एक तरफ चित्त को अशुद्ध करनेवाले साधनों से अपने को बचायें और दूसरी तरफ चित्तशुद्धि के साधनों में अपने चित्त को लगायें।

चित्तशुद्धि के साधन कौन-से हैं ? :

सत्संग, भगवन्नाम-जप, सेवा, सत्कर्म, भगवत्कथा का श्रवण, तीर्थ-स्नान, दान-पुण्य, अपनी गलतियों को दुबारा न दोहराना आदि साधनों से चित्त शुद्ध होता है। भोजन करें तो भगवान को अर्पित करके करें और पानी पियें तो प्रभु का स्मरण करके पियें। 'मेरा चित्त शुद्ध हो जाय... भगवान में प्रीति हो जाय...' - इस प्रकार की भावना करें और ईश्वरप्राप्ति के संकल्प की पूर्ति में दृढ़ता से लगें। ऐसा करने से चित्त शुद्ध होता है।

रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी, माँ शारदा ने महिला सत्संग-मंडल चलाया था। उसमें एक वेश्या भी आने लगी। महिला मंडल की दूसरी महिलाओं ने आपत्ति उठायी : ''इसको सत्संग में नहीं आने देना चाहिए।''

माँ शारदा ने कहा : ''सत्संग तो एक दरिया है जिसमें एक-दो बूँद तो क्या, अनेकों नाले भी तद्रूप हो जाते हैं। जैसे गंगाजी में आ मिलनेवाले झरने गंगामय हो जाते हैं, ऐसे ही अपने पूर्वजीवन की अशुद्धि पर पश्चात्ताप करके यह वेश्या भगवन्मय बन रही है।

पापी तो वह है जिसे अपने पापों के लिए प्रायश्चित नहीं होता, जो पाप को पाप ही नहीं मानता। यह पाप को पाप मानती है इसलिए इसकी शुद्धि हो जायेगी।''

साधुरेव स मंतव्यः - जो अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करके ईश्वर की तरफ आता है उसे साधु ही मानना चाहिए।

साधन और जीवन में अभिन्नता होनी चाहिए। आप जैसा साधन कर रहे हैं, ऐसा आपका जीवन होना चाहिए। जैसा आप बोल रहे हैं, ऐसा आपका आचरण-व्यवहार हो। इससे चित्त शुद्ध होगा।

गाँधीजी इसीसे सफल हुए। अंग्रेज बोलते कुछ थे, करते कुछ थे। गाँधीजी जो बोलते थे वही करते थे और जो करते थे वही बोलते थे - एकदम शुद्ध चित्त। चित्त शुद्ध होने से शत्रु परास्त हो जाते हैं।

क्रियासिद्धिः वसति सत्त्वे महत्तां नोपकरणे।

महापुरुषों के पास कोई विशेष साधन नहीं होते लेकिन चित्त की शुद्धि होती है। शुद्ध चित्त से परमात्म-प्रेरणा लेकर जब वे बोलते हैं तो वह सत्संग हो जाता है, शास्त्र हो जाता है।

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक / रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

छोटे प्रयोग - बड़े लाभ

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

दुर्बल विचारों को हटाने के लिए...

'मैं शरीर को जानता हूँ, मन को जानता हूँ, इन्द्रियों को जानता हूँ, मन में आये हुए काम, क्रोध, भय आदि के विचारों को जानता हूँ। इसलिए शरीर की अवस्था और मन के सुख-दुःख मुझे स्पर्श नहीं कर सकते... ।' ऐसे विचार बार-बार करो। हो सके तो कभी-कभी किसी कमरे में या एकांत स्थान पर अकेले बैठकर अपने-आपसे पूछो : 'क्या मैं शरीर हूँ ?' खूब गहराई से पूछो। जब तक भीतर से उत्तर न मिले तब तक बार-बार पूछते रहो। भीतर से उत्तर मिलेगा : 'नहीं, मैं यह शरीर नहीं हूँ।'

'तो फिर शरीर के सुख-दुःख और उसके सम्बन्धियों के शरीर के सुख-दुःख क्या मेरे सुख-दुःख हैं ?' उत्तर मिलेगा : 'नहीं... मैं शरीर नहीं तो शरीर के सुख-दुःख और उसके सम्बन्धियों के शरीर के सुख-दुःख मेरे कैसे हो सकते हैं ?'

फिर पूछो : 'तो क्या मैं मन हूँ ?' उत्तर आयेगा : 'मैं मन नहीं, क्योंकि मन को भी मैं जानता हूँ।' पुनः पूछो : 'क्या मैं बुद्धि हूँ ?' 'नहीं, बुद्धि के भी निर्णय बदलते रहते हैं, उसे मैं जानता हूँ।'

बचपन से ही हमें उलटे संस्कार पड़ गये हैं। मन और बुद्धि के साथ जुड़ जाने से दुर्भाग्य शुरू हो गया। इसी कारण परेशानियों का पार नहीं है। नकारात्मक चिन्तन और हताशा-निराशा के विचारों से रुग्ण बनी मानसिकता के कारण आज का मानव जीवन जीने के पर्याप्त साधन पाने के बाद भी त्रस्त है। उपरोक्त विचारों का बार-बार चिन्तन करना दुर्बल विचारों और दुर्भाग्य को निकालने का एक अनुभवसिद्ध इलाज है। इसका प्रयोग अवश्य करना। 'ॐ' का पावन जप करते जाना और आगे बढ़ते जाना। प्रभु के नाम का स्मरण और परमात्मा से प्रेम करते रहना।

'मैं शरीर, मन, बुद्धि और परिस्थितियों का साक्षी हूँ। मैं परमात्मा का हूँ और परमात्मा सर्वसमर्थ हैं। मैं सर्वसमर्थ का होकर क्यों दुःखी होऊँ ? क्यों डरूँ ? शरीर की मृत्यु हजारों बार हुई फिर भी मैं नहीं मरा। मैं अमर आत्मा हूँ। ॐ... ॐ... ॐ...' ऐसी भावना करते रहना... अपने-आपमें जगते जाना...

बीमारी की अवस्था में भी परम स्वास्थ्य

तन-मन की अस्वस्थता के समय भी आप दिव्य विचार करके लाभान्वित हो सकते हैं। आपके शरीर को रोग ने घेर लिया हो, आप बिस्तर पर पड़े हों अथवा आपको कोई शारीरिक पीड़ा सताती हो तो इन विचारों को अवश्य दुहराना। इन विचारों को अपने विचार बनाना। अवश्य लाभ होगा।

ऐसे समय में अपने-आपसे पूछो : 'रोग या पीड़ा किसे हुई है ?'

'शरीर को हुई है। शरीर पंचभूतों का है। इसमें तो परिवर्तन होता ही रहता है। रोग के कारण, दबी हुई कोई अशुद्धि बाहर निकल रही है अथवा इस देह में जो मेरी ममता है उसको दूर करने का सुअवसर आया है। पीड़ा इस पंचभौतिक शरीर को हो रही है, दुर्बल तन-मन हुए हैं। इनकी दुर्बलता को, इनकी पीड़ा को जाननेवाला मैं इनसे पृथक् हूँ। प्रकृति के इस शरीर की रक्षा अथवा इसमें परिवर्तन प्रकृति ही करती है। मैं परिवर्तन से निर्लेप हूँ। मैं प्रभु का, प्रभु मेरे। मैं चैतन्य आत्मा हूँ, परिवर्तन प्रकृति में है। मैं प्रकृति का भी साक्षी हूँ। शरीर की आरोग्यता, रुग्णता या मध्यावस्था - सबको देखनेवाला हूँ।'

'ॐ... ॐ... ॐ...' का पावन रटन करके अपनी महिमा में, अपनी आत्मशुद्धि में जाग जाओ।

अरे भैया ! चिन्ता किस बात की ? क्या तुम्हारा कोई नियंता नहीं है ? हजारों तन बदलने पर, हजारों मन के भाव बदलने पर भी सदियों से तुम्हारे साथ रहनेवाला परमात्मा, द्रष्टा, साक्षी,

वह अबदल आत्मा क्या तुम्हारा रक्षक नहीं है ?

क्या पता, इस रुग्णावस्था से भी कुछ नया अनुभव मिलनेवाला हो; शरीर की अहंता और सम्बन्धों की ममता तोड़ने के लिए तुम्हारे प्यारे प्रभु ने ही यह स्थिति पैदा की हो तो ? तू घबड़ा मत, चिन्ता मत कर बल्कि 'तेरी मर्जी पूरण हो...' का भाव रख। यह शरीर प्रकृति का है, पंचभूतों का है। मन और मन के विचार एवं तन के सम्बन्ध स्वप्नमात्र हैं। उन्हें बीतने दो, भैया ! ॐ शांति... ॐ आनंद... ॐ... ॐ...

इस प्रकार के विचार करके रुग्णावस्था का पूरा सदुपयोग करें, आपको खूब लाभ होगा। खान-पान में सावधानी बरतें, पथ्य-अपथ्य का ध्यान रखें, निद्रा-जागरण-विहार का ख्याल रखें और उपरोक्त प्रयोग करें तो आप शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।

फलों के प्रयोग में सावधानी : फल मरीजों के लिए हितकारी नहीं हैं। केला और अमरूद तो मरीजों के हित के बदले अहित ज्यादा करते हैं। खूब कफ बढ़ाते हैं। अनार व अंगूर के सिवाय दूसरे फल मरीजों को वैद्य से पूछकर ही खाने चाहिए।

'बीमारी की अवस्था में भी परम स्वास्थ्य' पर्चा भी छप चुका है। आश्रम की समितियाँ एवं सेवाभावी लोग आश्रम के सत्साहित्य विभाग से इस पर्चे को मँगवाकर इसका प्रचार-प्रसार करने का पुण्यलाभ ले सकते हैं; अस्पतालों में इसे बाँट सकते हैं।

जिज्ञासु साधकों के लिए एक प्रयोग

जिसकी सत्ता से बाहर की आँखें देख रही हैं वह चैतन्य परमात्मा सदा मौजूद है। बाहर की आँखों से आप परमात्मा को देखना चाहोगे तो दूरी मौजूद रहेगी। इन आँखों से दिखनेवाला आयेगा और चला जायेगा परंतु उस चैतन्य परमात्मा को आप चाहो तो भी अपने से दूर नहीं कर सकते। उसको आप 'मैं' रूप में मान लो, जान लो।

आप ३ माह तक यह अभ्यास करो कि 'जो कुछ खाया-पिया, लिया-दिया, देखा-सुना सब स्वप्न है, मिथ्या है। स्वप्न में भी बड़े-बड़े हवाई जहाज उड़ते दिखते हैं, नदी बहती है, सागर लहराता है परंतु जाग गये तो सब मिथ्या हो गया। रोटी खायी तो मिथ्या हो गयी, नींद में से उठे तो नींद मिथ्या हो गयी। नींद आयी और गयी, दोनों समय मेरा आत्मा मौजूद है। जाग्रत अवस्था आयी और गयी लेकिन मेरा आत्मा तो मौजूद है। मैं ही आत्मा हूँ।'

तो ३ माह सतत ऐसा अभ्यास करो कि 'सब सपना है... सब सपना है... सब मिथ्या है। आत्मा सत्य है... मैं आत्मा हूँ। वाह ! वाह !' बस, इसीका पुनरावर्तन... पुनरावर्तन... पुनरावर्तन करो। करोड़ों जन्मों में उलटे विचार किये हैं इसलिए आत्मस्वरूप को भूल गये हैं और अन्य सब सच्चा लगता है। अन्य सबको स्वप्न के समान असत्य जानो तो आत्मा की सच्चाई प्रकट हो जायेगी। चलते-फिरते यह प्रयोग करो तो जगदाकार वृत्ति मिटकर ब्रह्माकार होने लगेगी। 'जो दिखता है वह सब मिथ्या है' - ऐसा संकल्प दुहराते रहोगे तो वह पुनरावर्तन रात्रि में स्वप्न देखते वक्त भी चालू रहेगा। स्वप्न देखते वक्त भी आप बोलोगे : 'यह मिथ्या है।' फिर आँख खुल जायेगी तो पाओगे कि सचमुच, यह तो स्वप्न ही था; जो कि मिथ्या है। इस तरह आप जाग्रत पर भी स्वप्न की, मिथ्या की मुहर लगाते जाओ और सत्यस्वरूप आत्मा-परमात्मा में टिकते जाओ।

जाग्रत में आपकी अद्वैत निष्ठा ऐसी हो कि स्वप्न में भी आपको कोई डिगा न सके, द्वैत के संस्कार भर न सके। 'सब स्वप्न है... सब स्वप्न है...' इतना ही तो भीतर अनुभव करना है। बालू के टोकरे तो उठाने नहीं हैं, कोई मजदूरी तो करनी नहीं है। इतना तो आप कर सकते हो, सोच सकते हो, चलते-फिरते विचार कर सकते हो। यह आपके बस की बात है। बताओ, कौन असमर्थ है ऐसा सोचने में, ऐसा मन-ही-मन विचारने में ?

रात्रि को बिल्कुल हलका भोजन लो और जल्दी ९-१० बजे तक सो जाओ। प्रभात में साढे तीन बजे उठ जाओ और साधना, ध्यान व आत्मविचार करो। संयमी जीवन जियो। ६ माह तक, ३ माह तक या केवल ४० दिन ही ऐसा करके देखो। आपको बहुत सारे अनुभव होने लगेंगे, बहुत ऊँची यात्रा हो जायेगी।

*

महात्मा के पास कलियुग !

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

एक महात्मा बड़े सत्यनिष्ठ थे। जिससे लोग उन्हें 'सत्यनिष्ठ महात्मा' कहकर पुकारने लगे। वे लोगों से कहते कि "ईश्वर को क्या मंदिरों और मूर्तियों में खोजते हो ? क्या वह केवल मंदिर में भगवान, मसजिद में अल्लाह और चर्च में गॉड होकर बैठा है ? हमारा परमात्मा तो हमारा आत्मा होकर बैठा है। हमारे भीतर ही वह सर्वेश्वर अंतर्यामीरूप से विराजमान है। जप-ध्यान, साधन-भजन करके उसे पा लो।"

वास्तव में भगवान अपना आत्मा है। बाहर का भगवान पुजारी के ताले में बंद हो जाता है किंतु अंतर्यामीरूप से हर दिल में जो भगवान विद्यमान है वह किसीके ताले में बंद नहीं होता। किसीके द्वारा स्थापना करने से स्थापित हो जाय या किसीके तोड़ने से टूट जाय, ऐसा वह नहीं है।

महात्मा बड़े फक्कड़ थे। एक दिन महात्मा को एकांत में पाकर कलियुग ब्राह्मण का वेश धारण कर आया और बोला : "महाराज ! मैं कलियुग हूँ। आप लोगों को सीधा तत्त्वज्ञान सुना देते हैं। इससे लोग दृढ़ मनोबलवाले हो जाते हैं। उनका बुद्धिबल बढ़ जाता है। फिर उन पर मेरा प्रभाव नहीं चल पाता। इसलिए आप कथा भले करें, सच्चाई से रहते हैं सो भले रहें किंतु लोगों को अपना अनुभव खुल्लमखुल्ला न बताया करें। लोगों को ऐसा न बतायें कि वे मेरे प्रभाव से बाहर हो जायें। जो आत्मदेव को, परमात्मदेव को मानेगा उसके ऊपर न सत्ययुग, न त्रेता, न द्वापर और न ही मेरी दाल गल सकती है। वह तो सबका साक्षी, निर्लेप, ज्ञानी हो जायेगा। आप ऐसा ब्रह्मज्ञान एकदम खुला न दिया करें।"

महात्मा : "मुझे तो लोगों का जल्दी भला करना है। मेरे पास लोग आते रहें और मेरा आश्रम चलता रहे, मठ-मंदिर चलता रहे... ऐसा धंधा करने के लिए मैं नहीं आया। मेरा उद्देश्य है कि लोग अपने आत्मस्वरूप में जाग जायें, बस।"

"महाराज ! मेरी बात मानें। मैं कलियुग हूँ। अभी मेरा शासन चल रहा है। जिसके राज्य में रहते हैं उसीके पक्ष में काम करना चाहिए।"

"मैं तेरे राज्य में नहीं रहता, मैं तो मेरे आत्मराज्य में रहता हूँ। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग - सब आते-जाते रहते हैं। अब तू अपना राज्य माने तो यह तेरी गलती है। आत्मा ही मेरा अपना राज्य है। मैं उसीमें रहता हूँ।"

"महाराज ! अब बहुत हो गया। मैं तो आपको संत समझकर मनाने के लिए आया था। स्वराज्य या आत्मराज्य की बात करोगे तो फिर देख लेना मेरा भी प्रभाव कैसा होता है !"

"तुझे जो करना हो, कर लेना। हो-होकर क्या होगा ? बहुत-बहुत तो मेरे पास १०-२० सत्संगी कम आयेंगे, और क्या होगा ? तू विघ्न डालेगा, और क्या करेगा ?"

"अच्छा, महाराज ! देख लेना।"

"अच्छा-अच्छा, देख लिया। जा, तुझे जो करना है, कर ले।"

श्रद्धालु के लिए तो ज्ञानी उसके अपने हैं किंतु जो ज्ञानी के आगे आकर भी दादागिरी दिखाता है, ज्ञानी भी उसके बाप के बाप लगते हैं।

दूसरे दिन सत्संग में आकर एक आदमी ने महात्मा से कहा : "महाराज ! आपने हमसे दारू मँगवायी थी किंतु उसके पैसे नहीं दिये ?"

उसने महात्मा के लिए ऐसी-ऐसी बातें बोलीं कि लोगों को लगा कि यह सच बोल रहा है। महात्मा तो शराबी हैं। सत्संगियों के मन में उनके प्रति अश्रद्धा होने लगी। इससे आधे सत्संगी कम हो गये। अच्छी बात फैलाने में तो समय लगता है, परिश्रम लगता है किंतु बुराई फैलने-फैलाने में कहाँ देर लगती है ?

महात्मा समझ गये कि कलियुग अपना खेल खेल रहा है। फिर कलियुग ने महात्मा की निन्दा के लिए मांस बेचनेवाले एक कसाई को प्रेरित किया। ऐसा करते-करते कलियुग ने निन्दा की ऐसी आँधी शुरू कर दी कि जो सत्संगी महात्मा पर कुर्बान जाते थे, अब वे ही

निन्दक बन गये ! महात्मा की बड़ी बदनामी हुई।

महात्मा ने सोचा : 'अच्छा ! चलो, वाहवाही भी देख ली, अब बदनामी भी देख लेंगे। सब गुजर जायेगा।' महात्मा तो अपने आत्म-परमात्मभाव में मस्त रहे !

कलियुग फिर उनसे मिलने आया और बोला : "महाराज ! अब कैसा है आपका आश्रम ? कैसी चल रही है आपकी कथा ? आपकी वाहवाही करनेवाले लोग भी अब आपके लिए कुछ-का-कुछ बोलते हैं। आपको भगवान माननेवाले लोग ही अब आपको शैतान मानने लगे हैं ! इसलिए जिसके राज्य में रहते हैं उसीका पक्ष लीजिये, महाराज !

अगर मेरे ही राज्य में मेरे विरुद्ध आवाज उठायी तो तोबा हो जायेगी। साधारण राजनेता भी आदमी को तोबा करा देता है फिर मेरा शासन तो केवल एक देश पर नहीं, पूरी पृथ्वी पर है। अब भी आप मान जायें तो पहले आपके जितने भक्त थे उससे दुगने हो जायेंगे।"

"कैसे ?"

"महाराज ! देख लो, मैं कैसे करता हूँ ?"

दूसरे ही दिन लोगों को एक कोढ़ी रास्ते में पड़ा हुआ मिला। वह कह रहा था : "अरे ! कोई मुझे सत्यनिष्ठ महात्मा के आश्रम का पता बता दे।"

लोगों ने पूछा : "अरे, कोढ़ी ! वहाँ जाकर क्या करोगे ? वे तो शराबी-कबाबी हैं।"

"अरे, नहीं। वे बड़े उच्चकोटि के महात्मा हैं। भगवान ने रात को स्वप्न में मुझे कहा कि 'अगर सत्यनिष्ठ महात्मा तुझ पर खुश हो जायें और अपने हाथों से तुझ पर पानी के छींटे मार दें तो तू ठीक हो जायेगा। तू नौजवान हो जायेगा।' आप लोग कृपा करके मुझे उन महात्मा के पास ले चलिये। भगवान आपका भला करेंगे।"

लोग तो कौतुकप्रिय होते ही हैं। वे कोढ़ी को लेकर महात्मा के पास आये। उनमें सत्संगी भी आये, कुसंगी भी आये। कोढ़ी ने महात्मा से विनती की : "महाराज ! कृपा करें। मुझ पर एक अंजलि पानी छिड़क दें। चाहे गाली देकर ही छिड़कें लेकिन अपने हाथों से छिड़क दें। इससे मेरा रोग ठीक हो जायेगा।"

संत हृदय नवनीत समाना। संतपुरुष तो सदैव परहित में ही तत्पर रहते हैं। महात्मा ने कहा : "भाई ! अगर पानी छिड़कनेमात्र से तुम ठीक हो सकते हो तो लो, मैं अभी छिड़क देता हूँ।"

महात्मा ने जल छिड़क दिया। क्या आश्चर्य ! वह कोढ़ी एकदम स्वस्थ युवक बन गया ! सारे सत्संगी शर्मिंदा हो गये और बोल पड़े :

"महाराज ! माफ करना। हम आपको नहीं पहचान पाये।"

अब तो जो केवल तमाशा देखने आये थे वे कुसंगी भी सत्संगी बन गये। सभी कहने लगे : 'अरे, महाराज तो भगवान हैं ! श्रीकृष्ण, श्रीराम, शिवजी इनको तो हमने नहीं देखा किंतु उनकी तरह आत्मतत्त्व में रमण करनेवाले इन महाराज का योग-सामर्थ्य तो हमने देखा है। इनकी निन्दा सुनकर तो हम लोग पाप के भागी होकर बेमौत मारे जायेंगे।'

सत्संग में अब पहले से भी ज्यादा भीड़ होने लगी।

एकांत में कलियुग फिर आया और बोला : "महाराज ! देख लिया न ? कोढ़ी के रूप में आकर मैंने कैसा खेल किया ! अब आपके सत्संगी पहले से भी दुगने हो गये कि नहीं ? अब भी आपसे कहता हूँ कि राजा और महाराज मिल-जुलकर रहें तो अच्छा है।"

"नहीं-नहीं। मिल-जुलकर हम नहीं रहते। हम तो जिससे मिले हैं उससे मिले हैं। तुम भी उसीसे मिलो। तुम्हारा युग है, तुम जानो। हम तो ब्रह्मज्ञान की कथा करेंगे। लोग स्वस्थ, सुखी और सम्मानित रहें। वे औषधियों के दास न बनें, मन के दास न बनें और अपने सोऽहं स्वभाव को पा लें, बस।"

"महाराज ! फिर आपको भारी पड़ जायेगा। अभी आपने खुद ही मेरा प्रभाव देख लिया है।"

"तू कर-करके क्या कर लेगा ? तुझे जो करना था कर लिया - लोगों से मेरी निन्दा और स्तुति, दोनों करवा लीं। फिर-फिर से तू ही तो मेरे पास आता है। मैं तो तेरे पास नहीं आया।"

कैसे होते हैं आत्मराज्य को पाये हुए वे महापुरुष ! कोई निन्दा करे चाहे स्तुति, इससे उनके आत्मराज्य में कोई फर्क नहीं पड़ता।

हजारों वर्षों की सैकड़ों इतर साधनाएँ, वर्षों का शीर्षासन, तपस्या आदि दो घड़ी के समत्वयोग के आगे नन्हें हो जाते हैं। परिस्थितियों से अप्रभावित रहकर अपने आत्मा में स्थिति पा लेना सभी तपस्याओं और व्रतों से भी ऊँची स्थिति होती है।

परमात्मा

✲ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✲

(१) तुम जो वृक्ष देखते हो, उसकी अवश्य ही कोई जड़ होगी। यह सत्संग-भवन जिसमें हम बैठे हैं, उसकी दीवारों की भी नींव है, नहीं तो यह भारी भवन गिर जाता। इसी प्रकार इस जगत में जो सूर्य, चाँद, तारे, पहाड़, नदियाँ और अनेक आश्चर्यमय पदार्थ हम देख रहे हैं, उन सबका भी तो कोई उत्पादक होगा ही। पति और पत्नी के बिना बच्चा उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रकृति भी परमात्मा के बिना सृष्टिरूपी बीज उत्पन्न नहीं कर सकेगी।

सच्चिदानंद परमात्मा अपनी माया से अनेक सृष्टियों की उत्पत्ति करता रहता है। प्रकृति जड़ है। वह क्या कर सकती है ? जिसने हमें पैदा किया है, जो हमें कर्मों का फल देता है हमें उसे याद करना चाहिए। कर्म जड़ हैं। हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं, किंतु उनका फल भोगने में परतंत्र हैं।

(२) पुतलियाँ, नचानेवाले के वश में होती हैं। जैसे पुतली नचानेवाला पुतलियों से अनेक खेल खिलाता है, वैसे ही हम परमात्मा के हाथों में पुतलियों के समान नाचनेवाले हैं।

(३) प्रत्येक मनुष्य के दो कान, दो आँखें, दो हाथ, दो पैर आदि अंग हैं। उनका उत्पादक सर्व-शक्तिमान ज्योतिस्वरूप है। सबके कान, आँखें, हाथ, पैर, मुख आदि उसके स्वरूप हैं। वह अंतर्यामी घट-घट वासी सब हृदयों का स्वामी है।

वह बहरा नहीं है, सब सुनता और देखता है।

चींटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनत है।

उसकी ज्योति से सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्रकाश देते हैं। वह छोटे-से-छोटे कार्य का फल देनेवाला है। अतः हमें चाहिए कि भगवद्ध्यान, भगवद्ज्ञान, भगवदानंद में स्थिति प्राप्त करें।

अब के बिछड़े कब मिलेंगे, जाय पड़ेंगे दूर।

गुरु तेगबहादुर ने भी फरमाया है :

करणो होइ, सो ना कियो, पड़ियो लोभ के फंद।
नानक समो रम गयो, अब क्यों रोवत अंध!

(४) हम नाम और रूप में मग्न रहकर उस सर्जनहार को भूल बैठे हैं। सबमें उस स्वामी को देखो। जिस परमात्मा ने ये सब सुन्दर वस्तुएँ उत्पन्न की हैं, वह कितना सुन्दर होगा! बहिर्मुख बनोगे तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पाँच चोर आपको लूटकर भिखारी बना देंगे।

(५) परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए विद्यार्थी रातभर जागकर परिश्रम करते हैं। किंतु हम प्रभु की प्राप्ति के लिए क्या कर रहे हैं ?

प्रभुप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना तो दूर रहा, हमें तो प्रभु की याद भी नहीं आती।

कबीरजी कहते हैं :

रात गँवाई सोयकर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

(६) दूसरों को उपदेश देते हो कि 'सावधान हो जाओ! काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से बचो।' किंतु तुम औरों को जगाकर स्वयं सो जाते हो। थोड़ा सोचकर तो देखो कि इन काम आदि शत्रुओं ने तुम्हारे अन्दर कैसा डेरा जमाया है और वे रात-दिन तुम्हें लूट रहे हैं। जब तुम अपने भीतर टटोलोगे, तभी तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी अन्यथा कुछ भी नहीं होगा।

(७) **परमेश्वर ते भूलिए, व्यापन सभी रोग।**

अतः भगवान को सदैव याद रखो। एक साथ मिलकर अथवा अकेले ही भगवान की प्रार्थना अवश्य किया करो। कटिबद्ध होकर परमात्मा को याद करो और दूसरों को भी कराओ तो आपको उसका उत्तम फल प्राप्त होगा।

(८) सब सृष्टियों के स्वामी परमात्मा हैं। अतः सब धनादि पदार्थ उन्हींके समझने चाहिए। जैसे कछुए की पीठ कठोर होती है और आवश्यकता पड़ने पर वह अपने अंगों को उसमें सिकोड़ लेता है,

वैसे ही अपनी इन्द्रियों को स्थिर करके वश में रखो। यदि अपने में शक्ति न समझो तो परमात्मा से अनुनय-विनय करो कि 'प्रभु ! हमें सुमति दीजिये, शक्ति दीजिये जिससे हम अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में रखें और कर्तव्य का पालन करते रहें।'

(९) नास्तिक कहता है कि 'भगवान नहीं है।' उससे पूछना चाहिए कि 'तुम जो कहते हो कि 'मैं हूँ' वह क्या है ? तू क्या है ? क्या देह और उसके अवयव ? वे तो जड़ हैं और मरने के बाद वे यहीं पड़े रहेंगे। हमें और जगत को जो शक्ति चला रही है, वही भगवान है।'

(१०) परमात्मा के आधार पर ही यह सृष्टि चल रही है। उस परमात्मा के दर्शन के लिए हमें कहीं अन्यत्र भटकना नहीं है, अपने अन्दर ही खोज करनी है। सोचो कि 'मिलनेवाला कौन है ?' अपने भीतर दीपक जलाओ, शुभ कार्यों को करने में देरी मत करो। अपने स्वभाव को सुन्दर बनाओ। जैसे, स्त्री को वे ही काम करने चाहिए, जो पति को भायें। पति को स्त्री का शृंगार अच्छा नहीं लगता तो उसे शृंगार नहीं करना चाहिए। उसी तरह हमें भी ऐसे ही काम करने चाहिए, जो उसे (परमात्मा को) अच्छे लगें।

शेर होकर अपने को बिल्ली समझ बैठे हो। अपने अविनाशी, अखण्ड, सत्-चित्-आनंदस्वरूप को समझो। अपने मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों को बिठाकर, उसमें परमात्मा को कैसे बिठा सकोगे ? मन को मंदिर बनाओ, उसमें परमात्मा को विराजमान करो और आनंद लूटो।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

[गतांक से आगे]

श्री उड़िया बाबाजी

उपरति की ओर

अब आपका चित्त बहुत ही उपराम रहने लगा और आप अधिकतर ध्यानावस्था में ही स्थित रहने लगे। आपने यह निश्चय किया कि 'मैं ध्यान द्वारा ऐसी उच्च स्थिति प्राप्त करूँगा, जिससे प्राण निस्पन्द हो जायें।' आपका विचार था कि ध्यान द्वारा जो निस्पन्दता प्राप्त होती है वह प्राणायामादि के द्वारा प्राप्त होनेवाले प्राणनिरोध से बहुत उच्चकोटि की चीज है। अतः उसकी सिद्धि के लिए आप सिद्धासन में बैठकर ध्यान का अभ्यास करने लगे। आप कुछ महीने एक स्थान पर रहकर अभ्यास करते, फिर गंगाजी के किनारे-किनारे चलकर आगे बढ़ जाते। इस प्रकार ध्यान का अभ्यास इतना बढ़ा कि कुछ ही दिनों के बाद आपको ध्यानावस्था और स्वप्न में शुकदेव, वामदेव आदि ऋषि-मुनियों के दर्शन होने लगे। स्थान-परिवर्तन के बावजूद भी आपका ध्यानाभ्यास निरन्तर चलता रहता था।

फिर आप कानपुर और बिठूर होकर बरुआघाट पहुँचे। यहाँ ३० वर्ष से श्री ज्ञानाश्रमजी नाम के एक बड़े ही सरल, संयमी और सत्यनिष्ठ वयोवृद्ध महात्मा रहते थे। इन्हीं गुणों के कारण उनकी उस प्रांत में बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपके प्रति उनका व्यवहार अत्यंत स्नेहपूर्ण था और आप भी उनमें गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। वहाँ रहकर आपने उनकी खूब सेवा की।

वहाँ के बगीचे में आम के लगभग ५० पेड़ थे। उनमें से एक पेड़ के आम बहुत मीठे थे। अतः सब

लोग उन्हीं आमों की ताक में रहते थे। रात्रि में जब सब सो जाते तब आप महात्माजी के लिए अपने कटिवस्त्र में उस पेड़ के आम ले आते।

एक दिन महात्माजी अपने आश्रमवासियों से कह रहे थे कि 'इस फुलवाड़ी की भूमि ठीक नहीं है, अतः इसे ठीक करो और इसके गमलों की भी सफाई करो।' यह बात आपने सुन ली और रात्रि में ही किसीको भी पता न चले इस प्रकार वह सब काम कर डाला। आपकी ऐसी निष्कपट और निष्काम सेवा से श्री ज्ञानाश्रमजी आप पर बहुत प्रसन्न रहते थे और अन्य आश्रमवासियों के आगे आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।

इस प्रकार बरुआघाट में ९-१० महीने रहकर आप फिर उत्तर की ओर चल पड़े। गंगा का तट ही आपका सुनिश्चित मार्ग था। मार्ग में जगह-जगह पर श्री बरगदिया बाबा, स्वामी चतुराश्रमजी, श्री शिवानंद स्वामी आदि उच्चकोटि के महात्माओं के साथ आपका सत्संग होता रहा। आपकी ध्याननिष्ठा, वैराग्य और सरलता इन सभीके चित्त को मोह लेती थी।

फरुखाबाद पहुँचने पर आपने गंगातट छोड़कर नहर का किनारा पकड़ लिया। यहाँ एक बार आपको दिनभर भिक्षा नहीं मिली। रात्रि में आपको बड़ी जोर से भूख लगी। प्यास तो जल से मिट जाती लेकिन भूख का क्या ? दूर-दूर तक कोई गाँव दिखाई नहीं दे रहा था, जहाँ से आप भिक्षा ले आते। आप किसी पेड़ के नीचे आसन लगाकर शांत भाव से बैठ गये लेकिन वह भक्तवत्सल प्रभु अपने भक्त को भूखा कैसे रख सकता था ?

सब ओर चन्द्रमा की स्निग्ध कांति फैली हुई थी। इतने में ही एक बालक और बालिका खेलते-खेलते आये और आपसे पूछने लगे :

''बाबा! बाबा! इधर बैठे हो ? कुछ खाओगे ?''

आप भूखे तो थे ही, 'ना' कैसे बोलते ? आपने कहा : ''हाँ, भूख तो लगी है।''

''हम अभी खाना लाते हैं।''

आप सदा ब्राह्मण के हाथ का बना हुआ भोजन ही खाते थे। आपने बालकों से पूछा : ''तुम किस जाति के हो ?''

''हम माहेश्वरी बनिया हैं।''

बालक बड़े ही सुन्दर थे। आपको बार-बार उन्हें देखने की इच्छा होती थी। उनके प्यार, सरलता, सहजता और प्रभाव ने आप पर ऐसा कुछ जादू किया कि आपने बिना कुछ आपत्ति किये ही कह दिया : ''लाओ, लाओ। खायेंगे।''

थोड़ी ही देर में वे बालक दो मोटी-मोटी रोटियाँ और केले की सब्जी ले आये।

आपने पूछा : ''इधर तो कोई गाँव दिखाई नहीं देता। यह भोजन तुम लोग कहाँ से लाये ?''

''यहीं पास के ही गाँव से लाये हैं। हम खेलते-खेलते इधर आ गये थे। आप भूखे थे इसलिए आपके लिए भोजन ले आये। आप खा लें।''

आप भोजन करके तृप्त हुए। बालक थोड़ी देर इधर-उधर घूमकर चले गये। ब्रह्मचिन्तन करते-करते आपने थोड़ा विश्राम किया।

प्रभात होते-होते चार बजे अँधेरे में ही वे दोनों बालक फिर से आ गये और बोले : ''बाबा! कुछ पियोगे ?''

''बेटा! इतनी जल्दी आ गये ?''

''हाँ, बाबा! खेलते-खेलते आ गये।''

''हाँ, पियेंगे।''

बालक मिट्टी के कुल्हड़ में छाछ ले आये और आपने भी शौच आदि से निवृत्त हुए बिना ही छाछ पी ली।

बालकों ने कहा : ''अच्छा, बाबा! हम जाते हैं।''

आपके देखते-देखते वे बालक चले गये। बाद में वहाँ से उठने पर आपने पता लगाना चाहा कि वे बालक कहाँ रहते हैं, परंतु पूछने पर यह मालूम हुआ कि इस स्थान से दो मील दूरी तक कोई गाँव ही नहीं है। फिर बालक आये कहाँ से ? जरूर करुणानिधान प्रभु ही बालकों का रूप लेकर आये होंगे अपने भक्त का योगक्षेम वहन करने! इस घटना का आपके चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि भगवान के साकार रूप में आपका विशेष प्रेम न होने पर भी कई दिनों तक जब आपको इस प्रसंग का स्मरण होता तो आपका हृदय अहोभाव से भर आता था।

चतुर्मास निकट था, अतः चातुर्मास्य के लिए आप गंगातट पर गढ़ी नाम के एक गाँव में पधारे।

यहाँ मोतीराम नाम के एक ब्रह्मचारी रहते थे । वे बड़े ही निष्ठावान ब्राह्मण थे । मंत्रानुष्ठान और यज्ञादि में उनका विशेष प्रेम था । इन दिनों वे गायत्री मंत्र का अनुष्ठान कर रहे थे । आप उनकी यज्ञशाला में ही ठहर गये । यह स्थान बड़ा ही रमणीक था ।

इन दिनों आपका चित्त बहुत उदासीन रहता था । आप किसीसे भी विशेष बातचीत नहीं करते थे । भोजन तो आश्रम में ही हो जाता था, केवल स्नान के लिए आप ब्रह्मचारीजी के साथ गंगातट पर चले जाते थे । वहाँ स्नान के पश्चात् ब्रह्मचारीजी जप करने लगते और आप ध्यानस्थ होकर बैठे रहते ।

ब्रह्मचारीजी के पास ५-६ विद्यार्थी पढ़ते थे । आप समय-समय पर उन्हें कुछ पढ़ा दिया करते थे । आपकी पाठनशैली बहुत सुन्दर थी, इसलिए कई विद्यार्थियों का आपके प्रति बहुत प्रेम हो गया । उनमें बलराम नाम का एक विद्यार्थी आपसे विशेष प्रेम करता था । यहाँ रहते हुए आपको चेचक निकल आयी । इससे बलराम को इतना आघात पहुँचा कि उसे भी उसी समय ज्वर होकर चेचक निकल आयी । तेरह दिन के बाद आपका रोग अच्छा होने लगा और उसी समय बलराम की चेचक भी ढलने लगी । कुछ दिनों में आप दोनों साथ-साथ ही स्वस्थ हुए । तन्मयता का यह अद्भुत प्रसंग देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

विद्यार्थियों के अतिरिक्त यहाँ आस-पास के गाँवों के अनेकों स्त्री-पुरुष भी आपसे बड़ा प्रेम करने लगे थे । एक वृद्धा ब्राह्मणी का तो आपके प्रति अत्यंत वात्सल्यभाव था । वह प्रातःकाल उठते ही नित्यकर्म से निवृत्त हुए बिना एक रोटी सेंककर आपको दे जाती थी और आप भी बालकों की तरह स्नानादि किये बिना ही रोटी खा लेते थे । इस प्रकार वहाँ के लोगों को आपके प्रति बहुत ही श्रद्धा और अनुराग हो गया जिससे सबको आप अपने ही लगने लगे । किंतु सच्चे संत कब किसके होते हैं ? अथवा यों कहो कि किसके नहीं होते ? सारा संसार तो उनकी दृष्टि का विलासमात्र होता है । फिर वे किसके नहीं हैं ? और जब सभी उनके हैं तो वे कुछ इने-गिने भक्तों में ही अपने को कैसे बाँध सकते हैं ? एक दिन आप किसीको कोई सूचना दिये बिना चुपचाप मोहनपुर आ गये ।

मोहनपुर से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है । यहाँ से आपके जीवन में कुछ नवीनता भी पायी जाती है । अब तक आपका स्वभाव बड़ा गम्भीर और उदासीन था । किंतु यहाँ आप एक अबोध बालक की तरह रहते थे । यहाँ के भक्त आपको अपने घर का ही आदमी समझते थे तथा आपके साथ खूब खुलकर खेलते और विनोद करते थे । खान-पान के समय भी काफी विनोद होता था । आप किसीके घर भोजन करने जाते और अगर भोजन में थोड़ी देरी होती तो आप उसके घर का काम करने लगते थे । कभी सब्जी काटते, कभी मसाला पीसते, कभी कोई अन्य काम करने लगते ।

किंतु यहाँ आपका सारा समय क्रीड़ा-कौतुक में ही बीता हो - ऐसी बात नहीं है । ध्यान का अभ्यास यहाँ भी खूब बढ़ा । यह खेलकूद और विनोद तो केवल अपने को वहाँ के लोगों से छिपाने और प्रच्छन्न भाव से आत्मानंद का रसास्वादन करने के लिए ही था । यह तो एक आत्मारामी मुनि की बालवत् चर्या ही थी । इसलिए यहाँ के लोग तो यही समझने लगे थे कि ये बाबा तो अब अपने ही हैं ।

यहाँ रहकर आपका ध्यान का अभ्यास इतना बढ़ गया कि आप घंटों निश्चल भाव से बैठे रहते, शरीर का रंचमात्र भी भान नहीं रहता था । कहते हैं, उस समय आपकी खुली हुई आँखों में मक्खियाँ घुस जातीं, तब भी आपके शरीर में कोई चेष्टा नहीं होती थी । कभी-कभी तो आपका चित्त बहुत देर तक निर्विकल्प स्थिति में रहता था । बहुत समय से आपका प्राणों की निस्पन्द स्थिति लाने का जो संकल्प था वह भी यहाँ पूरा हो गया । यद्यपि आपकी निष्ठा निर्विशेष ब्रह्म में ही थी तो भी कभी-कभी स्वयं ही भगवान राम और श्रीकृष्ण आदि साकार रूपों के तथा उनकी दिव्य चिन्मयी लीलाओं के आपको दर्शन होने लगते थे । ये अनुभव इतने स्पष्ट होते कि ध्यान समाप्त होने पर भी इनका आभास आपके नेत्रों के सामने बना रहता था । इस प्रकार मोहनपुर में आपके ८-९ मास बालवत् सहजता और ध्यान की ऊँचाइयों में रमण करते हुए बड़े आनंद से बीते ।

(क्रमशः)

धर्मनिष्ठा

(संत रविदास और सदना पीर)

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

सिकंदर लोदी के शासनकाल की बात है। सदना पीर उन दिनों एक जाना-माना पीर था। सिकंदर लोदी के दरबार में भी उसकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। परंतु हिन्दू समाज में संत रविदास की बहुत प्रतिष्ठा थी।

एक दिन सदना पीर ने सोचा कि 'आजकल रविदास का बड़ा नाम हो रहा है... मीराबाई जैसी रानी भी इनको मानती है। मैं इनको समझाऊँ कि काफिरों की परंपरा छोड़ दें और कुरानशरीफ पढ़ें, कलमा पढ़ें। यदि ये मान गये तो सिकंदर लोदी से इनका बहुमान करा दूँगा। फिर इनको माननेवाले हजारों हिन्दू मुसलमान बन जायेंगे, जिससे हमारी जमात बढ़ जायेगी।'

ऐसा सोचकर वह संत रविदास के पास गया और बोला : ''आप काफिरों की तरह यह क्या बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) करते हैं ? पत्थर की मूर्ति के आगे बैठकर 'राम-राम' रटते रहते हैं ? आप हमारे साथ चलिये, कुरानशरीफ पढ़कर उसका फायदा उठाइये। हम आपको सुलतान से पीर की पदवी दिलवायेंगे।''

कोई संत की पदवी अथवा पीर की पदवी दूसरे से लेता है तो समझो, उसका संतत्व या पीरत्व खतरे में है। सदना पीर ने हिन्दू धर्म की निन्दा में कुछ और भी बातें कहीं। जब वह कह चुका तब रविदासजी ने कहा : ''मैंने तेरी सारी बातें सुनीं, सदना पीर ! अगर तेरे में साधुताई है, पीरपना है तो तुझे मेरी बात सुननी ही चाहिए।

किसी व्यक्ति, किसी पीर-पैगंबर या ईश्वर के बेटे द्वारा बनाया हुआ धर्म, धर्म नहीं एक संप्रदाय है। किंतु सनातन धर्म कोई संप्रदाय नहीं है। इसमें सभी मनुष्यों की भलाई के सिवाय कोई बात नहीं है।

मरने के बाद हूरें मिलेंगी, शराब के चश्मे मिलेंगे... इसलिए अल्लाह की बंदगी करना, यह कोई बंदगी नहीं है। यह तो अपनी वासनापूर्ति के लिए अल्लाह का उपयोग करना है।

खुदा कलाम कुरान बताओ, फिर क्यों जीव मारकर खाओ ?
खुदा नाम बलिदान चढ़ाओ, सो अल्लाह को दोष लगाओ ?
दिनभर रोजा नमाज गुजारें, संध्या समय पुनः मुर्गी मारें ?
भक्ति करे फिर खून बहावे, पामर किस विधि दोष मिटावे ?
जिसमें जीव हिंसा लिखी, वह नहीं खुदा कलाम।
दया करे सब जीव पर, सो ही अहले इसलाम ॥

आप कहते हैं कि 'हिन्दू बुतपरस्ती करते हैं, मूर्तिपूजक हैं, मूर्ख हैं। खुदाताला निराकार है।' तो भाई ! सुन लो :

निराकार तुम खुदा बताओ, कुरान खुदा का कलाम ठहराओ।
कलाम कहै तो बनै साकारा, फिर कहाँ रहा खुदा निराकारा ?

कलमा को खुदाताला के वचन कहते हो तो ये वचन तो साकार के हैं। निराकार क्या बोलेगा ?''

सदना पीर व रविदास के बीच इसलाम धर्म और सनातन धर्म की चर्चा लम्बे समय तक होती रही। सदना पीर की समझ में रविदास की बात आ गयी कि जीते-जी मुक्ति और अपना आत्मा-परमात्मा ही सार है। जिस सार को मंसूर समझ गये, उन्हें अनलहक की अनुभूति हुई, वही सनातन धर्म सर्वोपरि सत्य है।

संत रविदास की रहस्यमयी बातें सुनकर सदना पीर को सद्बुद्धि प्राप्त हुई। सदना पीर ने कहा : **''मरने के बाद कोई हमारी खुशामद करेगा और बाद में हमें मुक्ति मिलेगी, यह हम मान बैठे थे। हम सदा मुक्तात्मा हैं, इस बात का हमें पता ही नहीं था। अब आप हमें सनातन धर्म की दीक्षा दीजिये।''**

उसने संत रविदास से दीक्षा ली और उसका नाम रखा गया - रामदास।

सिकंदर लोदी को जब इस बात का पता चला तो उसने संत रविदास को बुलवाकर पहले तो खूब डाँटा, फिर प्रलोभन देते हुए कहा : ''अभी भी रामदास को फिर से सदना पीर बना दो तो हम

आपको 'रविदास पीर' की ऊँची पदवी दे देंगे। सदना पीर आपका चेला और आप उनके गुरु। मेरे दरबार में आप दोनों का सम्मान होगा और हम आपको मुख्य पीर का दर्जा देंगे।''

''मुख्य पीर का दर्जा तुम दोगे तो हमें तो तुम्हारी अधीनता स्वीकारनी पड़ेगी। जो सारे विश्व को बना-बनाके, नचा-नचाके मिटा देता है उस परमेश्वर से तुम्हारा प्रताप ज्यादा मानना पड़ेगा तो यह मुक्ति हुई कि गुलामी ? सुन ले भैया !

वेद धर्म है पूरन धर्मा, वेद अतिरिक्त और सब भर्मा।
वेद धर्म की सच्ची रीता, और सब धर्म कपोल प्रतीता॥
वेदवाक्य उत्तम धरम, निर्मल वाका ज्ञान।
यह सच्चा मत छोड़कर, मैं क्यों पढ़ूँ कुरान?

और धर्म तो पीर-पैगंबरों ने बनाये हैं लेकिन वैदिक धर्म सनातन है। ऐसा धर्म छोड़कर मैं तुम्हारी खुशामद क्यों करूँगा ?

तुम मुझे मुसलमान बनाना चाहते हो लेकिन मैं मनुष्य का बनाया हुआ मुसलमान क्यों बनूँ ? ईश्वर द्वारा बनाया हुआ मैं जन्मजात सनातन हिन्दू हूँ। ईश्वर के बनाये पद को छोड़कर मैं इंसान के बनाये पद पर क्यों गिरूँ ? नश्वर के लिए शाश्वत को क्यों छोड़ूँ ?

श्रुति शास्त्र स्मृति गाई, प्राण जायँ पुनि धर्म न जाई।
कुरान बहिश्त न चाहिए, मुझको हूर हजार॥
वेद धर्म त्यागूँ नहीं, जो गल चलै कटार।
वेद धर्म है पूरण धर्मा, करि कल्याण मिटावै भर्मा॥
सत्य सनातन वेद हैं, ज्ञान धर्म मर्याद।
जो ना जाने वेद को, वृथा करै बकवाद॥

तुम चाहो तो मेरा सिर कटवा दो, पत्थर बाँधकर मुझे यमुनाजी में फिंकवा दो। ऐसा करोगे तो यह शरीर मरेगा लेकिन मेरा आत्मा-परमात्मा तो अमर है।''

यह सुन सिकंदर लोदी आगबबूला होकर बोला : ''हद हो गयी, फकीर ! अब आखिरी निर्णय कर। या तो गला कटवाकर तेरा कीमा बनवा दूँ या तो मुसलमान बन जा तो पूजवा दूँ। सिकंदर तेरे भाग्य का विधाता है।''

मैंने तुम्हारी बातें सुनीं, अब तुम मेरी बात भी सुनो : ''तुम्हारी धमकियों से मैं डरनेवाला नहीं हूँ।

मैं नहीं दब्बू बाल गँवारा, गंगत्याग महूँ ताल किनारा॥
प्राण तजूँ पर धर्म न देऊँ। तुमसे शाह सत्य कह देऊँ॥
चोटी शिखा कबहुँ नहीं त्यागूँ। वस्त्र समान देह भल त्यागूँ॥
कंठ कृपाण का करौ प्रहारा। चाहै डुबावो सिंधु मंझारा॥

तुम भले मुझे गंगा में डलवा दो या पत्थर बाँधकर तालाब में फिंकवा दो।''

''इतना बेपरवाह ! इतना निर्भीक ! तू मौत को बुला रहा है ? सिपाहियो ! इसके पैरों में जंजीरें और हाथों में हथकड़ियाँ डालकर इसे कैदखाने में ले जाओ। इसका कीमा बनवायें या जल में डुबवायें, इसका निर्णय बाद में करेंगे।''

रविदासजी को कैद किया गया पर उनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। वे तो हरिनाम जपते रहे, अपने अमर आत्मा के भाव में मस्त रहे और सब कुछ प्रभु के भरोसे छोड़ते हुए बोले : 'प्रभु ! यदि तेरी यही मर्जी है तो तेरी मर्जी पूरण हो।' शरीर तो उनका कैदखाने में है लेकिन मन है प्रभु में !

भगवान ने सोचा कि 'जिसने मेरी मर्जी में अपनी मर्जी को मिला दिया है, उसको अगर सिकंदर लोदी कुछ कष्ट पहुँचायेगा तो सृष्टि के नियम में गड़बड़ हो जायेगी।'

सिकंदर लोदी सुबह-सुबह नमाज पढ़ने गया तो उसने देखा कि सामने रविदास खड़े हैं। वह बोला : 'ऐ काफिर ! तू यहाँ कहाँ से आ गया ?' उसने मुड़कर देखा तो रविदास ! दो-दो रूप ! फिर तीसरी ओर देखा तो वहाँ भी रविदास ! जिस भी दिशा में देखता, रविदास-ही-रविदास दिखायी देते। वह घबरा गया।

उसने आदेश दिया : ''सिपाहियो ! संत रविदास को बाइज्जत ले आओ।''

संत रविदास की जंजीरें खोल दी गयीं। सिकंदर उनके चरणों में गिरकर, गिड़गिड़ाकर माफी माँगने लगा : ''ऐ फकीर ! गुस्ताखी माफ करो। आपकी पहुँच अल्लाह तक है। अल्लाह ने आपको बचाने के लिए अनेकों रूप ले लिये थे। मैं आपको नहीं पहचान पाया, मैंने बड़ी गलती की। आप मुझे बख्श दें।''

संत रविदास : ''कोई बात नहीं, भैया ! ईश्वर की ऐसी ही मर्जी होगी।''

जिसने जंजीरों में जकड़कर कैदखाने में डाल दिया, उसीके प्रति महापुरुष के हृदय से आशीर्वाद निकल पड़े कि 'भगवान तुम्हारा भला करे।'

कैसे हैं सनातन हिन्दू धर्म के संत !

*

और कब तक चुप रहोगे ?

स्वामी विवेकानंदजी जब विदेश से भारत आ रहे थे, तब जलयान में दो ईसाई मिशनरी जानबूझकर स्वामीजी के साथ हिन्दू धर्म एवं ईसाई धर्म की तुलनात्मक चर्चा करने लगे। जब आलोचना में वे पछाड़ खाने लगे, तब उन्होंने अत्यंत भद्दी व अश्लील भाषा में हिन्दू धर्म व हिन्दुओं की निन्दा शुरू कर दी। स्वामीजी जब तक हो सका धैर्य धारण किये रहे परंतु अंत में उनसे न रहा गया। उनके पास जाकर स्वामीजी ने अचानक उनमें से एक की कमीज का कॉलर कसकर पकड़ा और दृढ़ स्वर से बोले : ''यदि मेरे धर्म की निन्दा की तो जहाज से नीचे फेंक दूँगा।''

वह ईसाई डर के मारे काँपता हुआ बोला : ''कृपया मुझे छोड़ दीजिये, फिर कभी ऐसी भूल नहीं करूँगा।'' उसके पश्चात् जब भी जहाज में उनकी स्वामीजी से मुलाकात होती, वे दोनों नम्रता से पेश आते।

भारत वापस आकर एक दिन उपरोक्त घटना का उल्लेख करते हुए विवेकानंदजी ने प्रियनाथ सिंह से कहा : ''अच्छा, सिंह ! तुम्हारी माँ का यदि कोई अपमान करता तो तुम क्या करते ?''

प्रियनाथ सिंह ने जवाब दिया : ''महाशय ! उसकी गर्दन पकड़कर उसे उचित दंड देता।''

स्वामीजी बोले : ''अच्छी बात है। यदि तुम्हारे मन में धर्म के प्रति भी ठीक वैसी ही भक्ति रहती तो तुम कभी भी एक हिन्दू लड़के को ईसाई होते नहीं देख सकते थे। परंतु देखो, आजकल रोज ऐसी घटनाएँ घट रही हैं परंतु तुम लोग चुप्पी साधे बैठे हो। तुम लोगों की धर्मनिष्ठा किधर गयी ? देश के प्रति ममता किधर गयी ? रोज तुम्हारे सामने ये पादरी लोग तुम्हारे धर्म को गालियाँ दे रहे हैं परंतु कितनों ने इसका प्रतिकार करने की चेष्टा की है ? तुम लोगों में से कितनों का रक्त इससे गर्म हुआ है ?''

***धर्मो रक्षति रक्षितः।* 'जो अपने धर्म की रक्षा करता है वह रक्षित रहता है।'** ध्यान रहे : सहिष्णुता के नाम पर हम कहीं अपने में कायरता और पलायनवादिता का दुर्गुण तो नहीं भर रहे हैं ?

एकादशी माहात्म्य

[योगिनी एकादशी : २५ जून २००३]

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : वासुदेव ! आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़ (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार ज्येष्ठ) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम 'योगिनी' है। यह बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली है। संसारसागर में डूबे हुए प्राणियों के लिए यह सनातन नौका के समान है।

अलकापुरी के राजाधिराज कुबेर सदा भगवान शिव की भक्ति में तत्पर रहनेवाले हैं। उनका हेममाली नामक एक यक्ष सेवक था, जो पूजा के लिए फूल लाया करता था। हेममाली की पत्नी का नाम विशालाक्षी था। वह यक्ष कामपाश में आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नी में आसक्त रहता था। एक दिन हेममाली मानसरोवर से फूल लाकर अपने घर में ही ठहर गया और पत्नी के प्रेमपाश में खोया रह गया, अतः कुबेर के भवन में न जा सका। इधर कुबेर मंदिर में बैठकर शिव का पूजन कर रहे थे। उन्होंने दोपहर तक फूल आने की प्रतीक्षा की। जब पूजा का समय व्यतीत हो गया तो यक्षराज ने कुपित होकर सेवकों से पूछा : 'यक्षो ! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है ?'

यक्षों ने कहा : राजन् ! वह तो पत्नी की कामना में आसक्त हो घर में ही रमण कर रहा है।

यह सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये और तुरंत ही हेममाली को बुलवाया। वह आकर कुबेर के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर कुबेर बोले :

'ओ पापी ! अरे दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवान की अवहेलना की है, अतः कोढ़ से युक्त और अपनी उस प्रियतमा से वियुक्त हो इस स्थान से भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा।'

कुबेर के ऐसा कहने पर वह उस स्थान से नीचे गिर गया। कोढ़ से सारा शरीर पीड़ित था परंतु शिव-पूजा के प्रभाव से उसकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई। तदनंतर वह पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुगिरि के शिखर पर गया। वहाँ उसे मुनिवर मार्कण्डेयजी के दर्शन हुए। पापकर्मा यक्ष ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। मुनिवर मार्कण्डेयजी ने उसे भय से काँपते देख पूछा : 'तुझे कोढ़ के रोग ने कैसे दबा लिया ?'

यक्ष बोला : मुने ! मैं कुबेर का अनुचर हेममाली हूँ। मैं प्रतिदिन मानसरोवर से फूल लाकर शिव-पूजा के समय कुबेर को दिया करता था। एक दिन पत्नी-सहवास के सुख में फँस जाने के कारण मुझे समय का भान ही नहीं रहा, अतः राजाधिराज कुबेर ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़ से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमा से बिछुड़ गया। मुनिश्रेष्ठ ! संतों का चित्त स्वभावतः परोपकार में लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधी को कर्तव्य का उपदेश दीजिये।

मार्कण्डेयजी ने कहा : तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, इसलिए मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रत का उपदेश देता हूँ। तुम आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष की 'योगिनी एकादशी' का व्रत करो। इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायेगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने 'योगिनी एकादशी' का व्रत किया, जिससे उसका कोढ़ दूर हो गया। इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान करने पर वह पूर्ण सुखी हो गया।

नृपश्रेष्ठ ! यह 'योगिनी' का व्रत ऐसा पुण्यदायी है कि ८८ हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है, वही फल 'योगिनी एकादशी' का व्रत करनेवाले मनुष्य को मिलता है। 'योगिनी' महान पापों को शांत करनेवाली और महान पुण्यफल देनेवाली है। इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।

('पद्म पुराण' से)

संयम और दृढ़ संकल्प की शक्ति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

संयम और दृढ़ संकल्प विद्यार्थी-जीवन की नींव है। संयम और सदाचार का आदर करनेवाला, सेवा और परोपकार के सद्गुणवाला, ध्यान और भगवन्नाम-जप करनेवाला विद्यार्थी इहलोक और परलोक, दोनों में बाजी मार लेता है।

जिसके जीवन में संयम है, वह हँसते-खेलते बड़े-बड़े कार्य कर सकता है। हे मानव ! ईश्वर की असीम शक्तियाँ तेरे भीतर छुपी हैं। ईश्वर का अद्‌भुत बल तेरे साथ है। तू अपने को अकेला मत समझ, ईश्वर और गुरु, दोनों का ज्ञान तेरे साथ है। परमात्म-चेतना और गुरुतत्त्व इन दोनों का सहयोग लेकर विकारों और नकारात्मक चिन्तन को कुचलते हुए, तू प्रभुसेवा और स्नेह से, पवित्र प्रेम और पवित्रता से आगे बढ़ता चला जा। जो महान बनना चाहते हैं, वे कभी फरियादात्मक चिन्तन नहीं करते। वे कभी चरित्रहीन व्यक्तियों का अनुकरण नहीं करते। इतिहास क्या है ?

जिनके जीवन में दृढ़ मनोबल और चरित्रबल है, उन मुट्ठीभर महाभाग्यशालियों की गाथाओं का संग्रह ही तो इतिहास है। हे मानव ! तू दृढ़ संकल्प कर कि 'मैं अपना समय व्यर्थ नहीं गवाऊँगा।' अगर युवती है तो युवान की तरफ और युवान है तो किसी युवती की तरफ विकारी निगाह नहीं उठायेंगे। अगर निगाह उठानी ही पड़ी तो संयम, पवित्रता व भगवान को आगे रखकर फिर बात करेंगे।

हे मानव ! तू अपने जीवन के ओज को अभी से सुरक्षित कर दे, वत्स !

वैद्य शिरोमणि धन्वंतरि महाराज से उनके

शिष्यों ने पूछा : ''हे गुरु महाराज ! आपकी शिक्षा, आपके उपदेशों और आपके दिव्य गुणों को हम अपने जीवन में आसानी से उतार सकें, इसका कोई सचोट एवं सरल उपाय बताने की कृपा करें।''

धन्वंतरि महाराज ने कहा : ''हे मेरे प्यारे शिष्यो ! सारी विद्याओं, सारी योग्यताओं, सारे सद्‌गुणों को प्रकट करनेवाला, सींचने और बढ़ानेवाला मुख्य गुण है ब्रह्मचर्य। तुम ब्रह्मचर्य व्रत को जितना अधिक समझोगे, सदाचारी और सेवाभावी जीवन बिताने का जितना दृढ़ संकल्प करोगे, तुम्हारी आत्मशक्ति उतनी ही विकसित होगी। वे लोग धनभागी हैं जो मानव-जाति को भगवत्प्रेम, भगवद्‌ज्ञान और भगवद्‌ध्यान की ओर ले जाते हैं; भगवान के दैवी कार्य में भागीदार होकर अपने दैवी गुण बढ़ाते हैं।

हे शिष्यो ! आलस्य और बुराइयों को अपना शत्रु समझो। पुरुषार्थ और परमात्म-प्रेम को अपना परम साथी समझो। दृढ़ संकल्पवान तथा सेवाभावी मनुष्य हर क्षेत्र में सफल और हर किसीका प्यारा हो सकता है।

१३ वर्ष के बालक रणजीत सिंह में पिता महासिंह ने संकल्प भर दिया कि 'मेरा बेटा तो कोहिनूर हीरा ही पहनेगा।' उस समय कोहिनूर अफगानिस्तान में था। इस दृढ़ संकल्प के बल से ही बालक रणजीत सिंह ने बड़ा होने पर अफगानिस्तान में जाकर शत्रुओं को परास्त किया और वहाँ से कोहिनूर लाया और पहनकर दिखा दिया।

ऐसे ही ५ वर्ष के दृढ़ निश्चयी बालक ध्रुव को जब देवर्षि नारदजी से मंत्र मिला तो वह मंत्रजप में इतनी दृढ़ता से लगा रहा कि ६ महीने में ही उसने सारे विश्व के स्वामी भगवान नारायण को प्रकट करके दिखा दिया।

हे मानव ! जैसे, बीज में वटवृक्ष, दूध में घी, तिलों में तेल और चकमक में आग छुपी है, वैसे ही तुझमें ईश्वर की अथाह शक्तियाँ छुपी हैं।

ज्यों तिलों में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साइयाँ तुझमें है, जाग सके तो जाग ॥

जो प्रतिदिन भगवान का थोड़ा-बहुत ध्यान करता है, उसकी बुद्धि जरूर तेजस्वी होती है। जो प्रतिदिन एक-दो घंटे मौन रहने का अभ्यास करता है, उसका मनोबल अवश्य बढ़ता है। जो माता-पिता और गुरुजनों की प्रसन्नता प्राप्त हो ऐसे कार्य करता है, वह आगे चलकर एक श्रेष्ठ नागरिक, श्रेष्ठ मनुष्य एवं श्रेष्ठ साधक होकर अपने साध्य को पा लेता है।

धन्वंतरि महाराज ने कहा : ''हे शिष्यो ! आयुर्वेद में सफलता पाने के लिए और सद्‌गुणों को विकसित करने के लिए अपने यौवन की सुरक्षा करो। ब्रह्मचर्य व्रत वह रत्न है, वह अमृत की खान है जो जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने का सामर्थ्य रखता है। अगर तुम यौवन-सुरक्षा के नियम समझोगे तो आयुर्वेद में तो सफल होगे ही, साथ में आत्मा-परमात्मा को पाने में भी सफल हो जाओगे।

हे मेरे शिष्यो ! हलके, संस्कारविहीन बच्चों और विद्यार्थियों का अनुकरण मत करना, बल्कि तुम तो संयमी-सदाचारी वीर पुरुषों एवं पवित्र भक्त आत्माओं, योगी, महात्माओं का अनुसरण करना।''

मीरा के जीवन में कितने विघ्न और बाधाएँ आयीं, फिर भी उसने भक्ति का मार्ग नहीं छोड़ा। गार्गी को कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं, फिर भी उसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया। धनभागी है वह १८ वर्षिया सुलभा, जिसका राजा जनक ने आदर किया, अर्घ्य-पाद्य से पूजन किया उसने इस नन्ही-सी उम्र में परमात्म-साक्षात्कार कर लिया। ऐसे ही हजार-हजार विघ्न-बाधाएँ आ जाने पर भी जो संयम, सदाचार, ध्यान, भगवान की भक्ति व सेवा का रास्ता नहीं छोड़ता, वह संसार में बाजी जरूर मार लेता है।

हरि ॐ हरि ॐ... बल... हिम्मत... पवित्रता... आत्मशक्ति का विकास... ॐ... ॐ...

निःस्वार्थ प्रभुसेवा व समाजसेवा से, ईश्वर के दैवी कार्य में सहभागी होने से तुम्हारा देवत्व जगेगा। जिनके जीवन में महापुरुषों की सेवा व सत्संग नहीं है, वे लोग ध्यान करते हैं तो निराशा की खाई में गिरते हैं और अगर वे संसार के भोगों में पड़ते हैं तो संसार की दलदल में ही डूब मरते हैं, बड़ी दयनीय दशा को प्राप्त होते हैं। धनभागी तो वे हैं जो निःस्वार्थ सेवा करते हुए, ईश्वर और संतों के दैवी कार्य करते हुए अपने आत्मदेव का आनंद पाते हैं।

भगवन्नाम कल्पतरु

श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास एक साधु आये। वे भगवन्नाम के माहात्म्य को जानते थे, नाम में उनका अनन्य विश्वास था। उनके पास एक लोटा और एक पुस्तक के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

पुस्तक को वे बड़े आदर से रखते थे। प्रतिदिन फूल चढ़ाकर उसकी पूजा करते और बीच-बीच में खोलकर देखते थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस की उनसे बातचीत होती रहती थी। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उन साधु को बहुत मनाकर उनसे देखने के लिए वह पुस्तक माँग ली। उन्होंने जब पुस्तक खोलकर देखी तो उसमें स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था - **'ॐ राम'**। उन साधु ने कहा : 'बहुत ग्रंथों को पढ़कर क्या होगा ? एक भगवान से ही सारे वेद-पुराण निकले हैं। भगवान में और उनके नाम में अभेद है। अतएव चार वेद, १८ पुराण - सब शास्त्रों में जो कुछ है, वह सभी एक भगवन्नाम में विद्यमान है। इससे बस, उनका नाम ले रखा है।'

अमृत के कुण्ड में चाहे कोई इच्छापूर्वक नहा ले या भूल से गिर पड़े अथवा कोई धक्का देकर गिरा दे, अमृत का स्पर्श होते ही वह अमर हो जाता है। इसी प्रकार भगवान का नाम चाहे जैसे भी लिया जाय, भगवान से मिला ही देता है। एक साधु से किसीने पूछा : "महाराज ! नाम लेने से क्या होता है ?"

साधु ने उत्तर दिया : "नाम से क्या नहीं होता ? जिस माया ने जगत को मोहित कर रखा है, अज्ञानी बना रखा है, भगवन्नाम के प्रभाव से वह माया ही मोहित हो जाती है; अपना प्रभाव खो देती है। भगवन्नाम से जो चाहा जाता है उससे कहीं अधिक प्राप्त होता है और चाहना-पाना, दोनों ही मिट जाते हैं।"

भगवन्नाम कल्पतरु है, सब अभीष्ट को देनेवाला है। मुक्ति चाहोगे मुक्ति मिलेगी, ब्रह्मानंद चाहोगे ब्रह्मानंद मिलेगा। नाम से कुछ भी असाध्य नहीं है।

विश्व शांति महा जपयज्ञ

भगवन्नाम-जप करने से वायुमंडल में एक प्रकार के भगवदीय रस, भगवदीय आनंद व सात्त्विकता का संचार होता है, जो आज के वातावरण में विद्यमान वैचारिक प्रदूषण को दूर करता है। भगवन्नाम-जप के प्रभाव से दिव्य रक्षा-कवच बनता है जो जापक को विभिन्न हलके तत्त्वों से बचाकर आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करता है।

पूज्य बापूजी ने १९ अप्रैल से ७ मई २००३ तक इन्दौर आश्रम (म.प्र.) में अपने एकांतवास के दौरान मानवमात्र के परम कल्याण की भावना से कहा : **"कलियुग में भगवन्नाम एवं मंत्रों की बड़ी भारी महिमा है। शब्दों को शब्दों से काटने के लिए भगवन्नाम-जप से बढ़कर कुछ नहीं है।**

'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।'

अमेरिका ने भले बमों के बल से ईराक को तहस-नहस कर दिया लेकिन अमरिकी भी बेचारे अशांत हैं और ईराकी भी। युद्ध में जो ईराकी मारे गये हैं, वे अमेरिका से बदला लेने के लिए आनेवाले कुछ वर्षों में क्या-का-क्या कर दिखायेंगे और उनके संकल्प अमेरिका को भारी पड़ेंगे। पूरे विश्व में चारों ओर अशांति की आँधी फैलेगी। उसके विनाशकारी प्रभाव को रोकने के लिए पूरे हिन्दुस्तान में 'विश्व शांति महा जपयज्ञ' का आयोजन किया जाना चाहिए।

हम सोच रहे हैं कि चारों तरफ जो बेरोजगार लोग हैं, उन्हें इकट्ठा करें और जप की महिमा बताकर उन्हें जप के लिए बैठाया जाय। दोपहर को उनको भोजन करायें व शाम को पैसे दें। जप करने से उनका तो भला होगा ही, साथ ही वातावरण में जो अशांति, पाप और रोग के परमाणु हैं, वे भी नष्ट होंगे एवं सात्त्विकता आयेगी। 'बाल संस्कार केन्द्र' वाले बच्चे भी जप करें। हम चाहते हैं कि पूरे देश में ऐसा आयोजन हो और आश्रम की सारी समितियाँ यह आयोजन करें।"

सभी श्री योग वेदान्त सेवा समितियों को पूज्यश्री के इस महासंकल्प में सहभागी होने का यह स्वर्णिम अवसर है। उन्हें अमदावाद आश्रम से आर्थिक सहयोग भी दिया जायेगा। इस महा जपयज्ञ की रूपरेखा व क्रियाविधि के विवरण हेतु श्री अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति, अमदावाद से संपर्क करें।

'पटरियाँ पार करनी हैं'

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

एक आदमी अमदावाद रेलवे स्टेशन के पूछताछ विभाग में जाकर पूछने लगा :

''बाबूजी ! जरा बताइये कि दिल्ली मेल कितने बजे जाती है ?''

''९.३० बजे।''

''अच्छा, बाबूजी ! गुजरात मेल कितने बजे जाती है ?''

''१०.१० पर।''

''अच्छा, साहब ! सौराष्ट्र मेल ?''

''११.०० बजे।''

''अच्छा, 'शताब्दी' ?''

''२.३०।''

''साहब ! जरा इतना और बता दीजिये कि 'अहिंसा' का समय क्या है ?''

''४.०५।''

''और आश्रम एक्सप्रेस कितने बजे जाती है ?''

''५.४५ पर।''

''लोकशक्ति' का समय क्या है ?''

''७.३५, परंतु आपको जाना कहाँ है ?''

''बाबूजी ! मुझे तो केवल पटरियाँ ही पार करनी हैं।''

''अरे ! केवल पटरियाँ ही पार करनी हैं तो इतनी सारी गाड़ियों का समय खोपड़ी में क्यों भरते हो ?''

ऐसे ही हम लोग भी दुनिया की कई बिना मतलब की बातें खोपड़ी में भरते रहते हैं। हमें भी केवल जन्म-मरण की पटरियाँ ही तो पार करनी हैं और कोई ज्यादा काम थोड़े ही करना है ?

तुलसीदासजी ने कहा है :

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं।
मोह मूल परमारथु नाहीं॥

(श्रीरामचरित. अयो. कां. : ९१.४)

हम लोग जगत का जो कुछ देखते, सुनते और विचारते हैं वह केवल मोह से अर्थात् उलटे ज्ञान से ही देखते, सुनते और विचारते हैं। हमें जो कुछ दिखता है, पंचभूतों का ही दिखता है जबकि पंचभूतों की गहराई में प्रकृति है और प्रकृति की गहराई में परमात्मा है। लोग उस परमात्मा को न देखकर तू-तेरा, मैं-मेरा, अच्छा-बुरा, छोड़ना-पकड़ना आदि पर ही नजर रखते हैं; मूल पर उनकी नजर ही नहीं जाती !

तकदे बाजी नूं, बाजीगर नूं कोई नहीं तकदा।

'लोग खेल को देखते हैं लेकिन खिलाड़ी को कोई नहीं देखता।'

सही तो यह है कि दिखे संसाररूपी बाजी, पर नजर बाजीगर पर जाय अर्थात् दिखे दुनिया, लेकिन दुनिया को चलानेवाली सत्ता की स्मृति आ जाय, दृष्टा, साक्षी परमात्मा का दीदार हो जाय... इसीमें हम सबका कल्याण है, मंगल है।

अतः इधर-उधर की, तू-तू, मैं-मैं की बातें छोड़कर केवल उसीके विषय में सुनें, जो सबके अंदर अंतर्यामीरूप से विराजमान है। उसीके विषय में सोचें, उसीके नाम का कीर्तन करें, उसीका ध्यान करें। जो सबका एकमात्र आधार है, जो सबका एकमात्र हितैषी है, जो सबका आत्मा बना बैठा है उस परमेश्वर का ही चिन्तन, ध्यान, स्मरण, कीर्तन आदि करने से एवं उसके नाते ही जगत का व्यवहार करने से जन्म-मरण की पटरियाँ पार करना अत्यंत आसान हो जायेगा।

उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता।
स्वयं दुःखं च सम्प्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते॥

'उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि वे दूसरों के दुःख को सहन नहीं कर पाते। अपने को दुःख प्राप्त हो जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं किंतु दूसरों के दुःख का निवारण ही करते हैं।'

कैंसर के रोगियों के लिए

बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू, पानमसाला, गुटखा, शराब आदि व्यसनों का सेवन करने से, अण्डा-मांस-मछली का आहार करने से कैंसर की संभावना बढ़ जाती है। अतः कैंसर के रोगी इनका सेवन पूर्णतया बंद कर दें।

टमाटर, आलू, बैंगन, पत्तागोभी, फूलगोभी, सरसों का साग, पालक, अचार, पनीर, बेसन, कढ़ी, मावे से बनी मिठाइयाँ, बेकरी की चीजें, दही, दूध के साथ अचार, गुड़, तेल, मिर्च-मसाले, बासी भोजन तथा देर से पचनेवाला भोजन पूर्णरूपेण वर्जित है।

साबुत मूँग, छिलकेवाली मूँग की दाल, पतला दलिया, अनार, हरे मीठे अंगूर, काले अंगूर, करेला, परवल, कच्ची मूली, मूली के पत्तों की सब्जी, ककड़ी, तुरई, पेठा (सफेद कुम्हड़ा), गाय का दूध तथा घी कैंसर के रोगियों के लिए पथ्य है।

औषधि-उपचार

(१) हल्दी : हल्दी में कैंसर-निरोधक तत्त्व पाये गये हैं। इसलिए भोजन से पहले हल्दी का २ ग्राम चूर्ण दिन में २ बार पानी से सेवन करें।

(२) तुलसी : तुलसी के पत्तों में 'माइकास्ट्रिन' नामक कैंसर-निरोधक तत्त्व पाया जाता है जो कि कैंसर की कोशिकाओं पर प्रभावशाली है। हर घंटे में १-२ पत्ते मुँह में रखकर खाते रहना चाहिए तथा ५ ग्राम तुलसी (करीब ३० पत्ते) के रस में ५ ग्राम शहद मिलाकर रोज सुबह-शाम लेते रहना चाहिए।

(३) नीम : नीम अपने कटु रस के कारण कैंसर के कणों को हटाता है। अतः नीम के ७ पत्ते तथा तुलसी के ५ पत्ते रोज सुबह खाली पेट खाकर १ गिलास पानी पियें।

(४) छोटी हरड़ : गले व मुँह के कैंसर में १ छोटी हरड़ रोज भोजन के बाद दिन में २ बार चूसनी चाहिए।

(५) कच्ची लौकी : २०० ग्राम कच्ची लौकी, तुलसी के ५ पत्ते तथा पुदीने के ७ पत्ते लेकर उनका रस निकालें। फिर उसमें १ ग्राम सोंठ व काली मिर्च के ४ दाने पीसकर डालें। इस रस का प्रतिदिन सेवन करें।

(६) गेहूँ के ज्वारे : आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'आरोग्यनिधि' के पृष्ठ क्र. १२३ पर लिखे प्रयोग के अनुसार गेहूँ के ज्वारों का रस लें।

(७) गोझरण अर्क : आश्रम द्वारा निर्मित 'गोझरण अर्क' २ ढक्कन लेकर उसमें ६ ढक्कन पानी मिलाकर सुबह खाली पेट तथा शाम को भोजन से १ घंटा पहले लेना चाहिए। कैंसर के मरीज को लगातार १२ माह तक तथा एड्स के मरीज को लगातार १५ माह तक 'गोझरण अर्क' का सेवन करना चाहिए।

✲ 'गोझरण अर्क' के न मिलने पर देशी गाय का ही ५० मि.ली. ताजा गोझरण (गोमूत्र) प्रतिदिन सुबह ले सकते हैं।

✲ गोझरण-सेवन से १ घंटे पहले एवं १ घंटे बाद तक कुछ खाना-पीना नहीं है। **अंग्रेजी दवाइयों के सेवन से हुए दुष्परिणाम (साइड इफेक्ट्स) गोझरण या गोझरण अर्क के सेवन से दूर होते हैं।**

✲ देशी गाय का आधा छोटा चम्मच गोबर ५० मि.ली. गोझरण में मिलाकर घोल लें। इसे ८ बार महीन सूती कपड़े से छानकर प्रतिदिन दिन में १ बार भोजन से १ घंटा पहले लें। इससे लाभ होता है।

इन सभी उपायों में से कोई भी उपाय करके स्वस्थ रहें।

- साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।

गुरुवर की करुणा अपार है

मैं बचपन से ही ईश्वर की तलाश में रहा। जब कोई राह नहीं मिली तो पाश्चात्य अंधानुकरण करने लगा परंतु पश्चिमी जगत की वास्तविकता और गंदगी ने मन से ईश्वर का विश्वास ही उठा दिया और मैं गंदे जीवन में फँस गया।

मुझे हस्तमैथुन की बुरी आदत लग गयी। लड़की को देखते ही मन वासना से भर जाता और मैं एकांत खोजने लगता। दिन में तीन-चार बार वीर्यनाश कर लेता था।

तभी मेरे एक मुसलमान मित्र ने परम पूज्य गुरुदेव के विषय में बताया और मैं साधना के पथ पर चल पड़ा, किंतु मेरी वह गंदी आदत न छूट पायी।

आखिर एक दिन गुरुदेव को याद करके खूब रोया कि इस आदत से छुटकारा दिलाने की कृपा करें। तभी मुझे एक मंत्र मिला जो भयनाशक है :

'ॐ ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय नमः।'

इसका ४१ दिन तक १०८ बार जप करना होता है। मैंने भी इसका जप शुरू किया तो अचानक ही भय के साथ-साथ मेरी वह गंदी आदत भी छूट गयी।

गुरुदेव न जाने किस समय, किस रूप में आकर मंत्र बता देते हैं यह तो वे ही जानें! पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में शत-शत नमन।

- एस. चटर्जी, नया सरकंडा,
बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

पानीपत (हरियाणा), ९ से ११ मई : जहाँ एक ओर वैशाख मास के सूर्य की तप्त किरणें लोगों को तपन दे रही थीं, वहीं दूसरी ओर पानीपत के हुडा सेक्टर-२५ के मैदान में पूज्यश्री की आत्मा-परमात्मा को छूकर आनेवाली अमृतवाणी ही हृदय को शीतलता प्रदान कर रही थी।

पूज्यश्री ने भारतीय ऋषियों द्वारा प्रतिपादित आचार-संहिता को आज की आवश्यकता बताते हुए कहा : **''मानव-जाति का यह दुर्भाग्य है कि वह उन महर्षियों के सिद्धांतों को न अपनाकर पथभ्रष्ट हो रही है। अपने हृदय में ही शाश्वत सुख का अनमोल खजाना छुपा होने के बावजूद क्षणिक सुख की तलाश में भटक रही है। अपनी पावन संस्कृति से विमुख होकर पतन की गहरी खाई की ओर जा रही है।**

मानव की मौलिक माँग स्वाधीनता, शांति व सच्चा सुख है, जिसकी पूर्ति हेतु दूरदर्शी ऋषियों ने अनेक अनुभवसिद्ध मार्ग बताये हुए हैं। उनका आश्रय लेकर आप अपनी मौलिक माँग की पूर्ति कर सकते हैं। सभी तनावों, क्लेशों, भयों और अभावों से मुक्ति और शाश्वत सुख में तृप्ति पा सकते हैं।''

हरिद्वार (उत्तरांचल), १५ से १८ मई : हरिद्वार में देश-विदेश से आये पूनम व्रतधारी साधक एवं परम पुण्यात्मा भक्तों ने परम पूज्य बापूजी द्वारा बहायी गयी आत्मस्पर्शी वाणीरूपी गंगा में बड़ी ही तल्लीनता से अवगाहन किया और आत्मतृप्ति एवं परमानंद का अनुभव किया। ज्ञान, भक्ति एवं योगमार्ग के मर्मज्ञ परम पूज्य बापूजी ने आत्मज्ञान की गूढ़ युक्तियों पर प्रकाश डालते हुए

कहा : ''व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म, जाति या संस्कृति का अनुयायी हो, वह आत्मनिष्ठ हो सकता है।''

पूज्य बापूजी ने अपने उद्‌बोधन में विश्वास दिलाया कि **''प्रभुप्राप्ति प्रारब्ध से नहीं बल्कि पुरुषार्थ से होती है, प्रारब्ध तो एक गौण वस्तु है।''**

जब जागे तब सवेरा, सकल बदल दो हाल।
जो गुजरा अच्छा-बुरा, उसका करो न ख्याल॥

ब्रह्मज्ञान के मर्मज्ञ आत्मनिष्ठ बापूजी ने ब्रह्मज्ञान में निष्ठा प्रदान करनेवाले सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन करते हुए कहा : **''मस्तिष्क में १० अरब न्यूरॉन्स पाये जाते हैं, जिनमें से एक-एक न्यूरॉन १-१ नक्षत्र का प्रतिनिधित्व करता है। विश्वामित्र ने उन सूक्ष्म कोषों (न्यूरॉन्स) को मंत्रजप, एकाग्रता, संयम और दृढ़ संकल्पशक्ति से विकसित करके कल्पनातीत सामर्थ्य जगाया था।''**

पंतद्वीप में एकत्रित जनसमुदाय को बधाई देते हुए संत शिरोमणि पूज्य बापूजी ने कहा : **''आप सब धनभागी हैं जो पवित्र गंगातट पर आपको आत्मज्ञानामृत के पान का परम सौभाग्य मिल रहा है। जिस ज्ञान को भोलेनाथ ने माता पार्वती को व शेषशायी भगवान विष्णु ने लक्ष्मीजी को तथा चाक्षुष मन्वंतर में इसी पावन भूमि पर जगत सृजेता ब्रह्माजी ने देवर्षि नारद को सुनाया था, आज वही आत्मज्ञान का अमृत-संदेश मैं आपको सुना रहा हूँ।''**

पूज्यश्री ने साधना में तीव्र उन्नति के लिए अनेक कुंजियाँ बतायीं तथा मौन और एकांतवास का महत्त्व प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा : **''मनुष्य लोक में कर्म से शीघ्र सिद्धि होती है लेकिन भगवत्प्राप्ति कर्मफल की लिप्सा का त्याग और परमात्म-ज्ञान में विश्रांति पाने से होती है।''**

संतप्रवर पूज्य बापूजी ने प्रातःकालीन समय का महत्त्व बताते हुए कहा : **''जो सूर्योदय से पहले शय्या त्याग देता है उसके अंतःकरण में सात्त्विक गुण पुष्ट होते हैं।**

सुधा सरस वायु बहे, कलरव करत विहंग।
अजब अनोखा जगत में, प्रातःकाल का रंग॥

जब चन्द्रमा की किरणें शांत हो गयी हों और सूर्य की किरणें अभी धरती पर नहीं पड़ी हों, ऐसी संध्या की वेला में सभी मंत्र जागृत अवस्था में रहते हैं। उस समय किया हुआ जप-प्राणायाम अमित फल देता है। दृढ़ इच्छाशक्ति, रोग मिटाने तथा परमात्म-प्राप्ति के लिए ४० दिन का प्रयोग करके देखो। यह अमृतवेला है, जिसे वैज्ञानिक सूर्योदय के पहले के हवामान में ओजोन की उपस्थिति कहते हैं, इसीको शास्त्रकारों ने सात्त्विक सामर्थ्यदाता वातावरण कहा है। अतः अमृतवेला का लाभ अवश्य लें। रात्रि का भोजन देर से न करें। सुबह देर से न उठें। सूर्योदय से एकाध घंटा पहले प्राणायाम, जप एवं ध्यान में लग जायें।''

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) काशीपुर (उ.प्र.) : गीता भागवत सत्संग, १ व २ जून २००३, रामलीला मैदान, जि. ऊधम सिंह नगर।
फोन : (०५९४७) २७६१०९, २७४५३९, ९८३७१२०१९१.

(२) बरेली (उ.प्र.) : गीता भागवत सत्संग, ३ से ५ जून २००३, गवर्नमेंट इंटर कॉलेज, कोतवाली के सामने।
फोन : (०५८१) २४८८२१३, २४२१३३९, ९८३७१७९६३५.

(३) नैमिषारण्य (उ.प्र.) : गीता भागवत सत्संग, ७ व ८ जून २००३, स्वामी नारदानंद आश्रम, जनपद-सीतापुर।
फोन : हरदोई (०५८५२) २३६५७३, २८०५१३, सीतापुर (०५८६२) २४२२८२, ९४१५०६६२४५.

(४) लखनऊ (उ.प्र.) : गीता भागवत सत्संग, १३ से १५ जून २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, ३२ बटालियन पी.ए.सी. के पीछे, कानपुर रोड।
फोन : (०५२२) २४५३२०६, २४३१३१७, २६६२६४२, ९८३९०२२१३२.

(५) गोण्डा (उ.प्र.) : गीता भागवत सत्संग, १६ से १८ जून २००३, टामसन इंटर कॉलेज।
फोन : (०५२६२) २२२७२३, २२३०९९, २२६३२१, २२८१५०, ९४१५१२०६२३.

पूर्णिमा दर्शन : १४ जून २००३, लखनऊ में

पानीपत की धरा पर, उमड़ रहा आनंद। सत्संग-सुधा से काट रहे, बापूजी भवबंध ॥

शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता एवं बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रसाद पाने की सर्वोत्तम कुंजियाँ प्रदान करनेवाली

दो अनमोल पुस्तकें
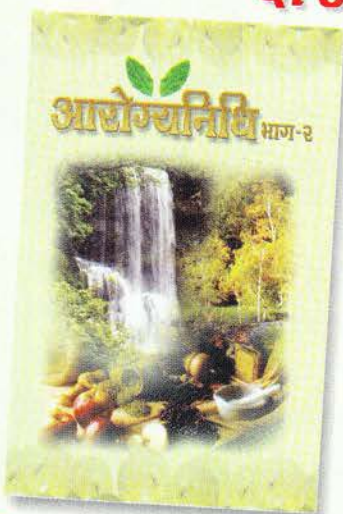
'आरोग्यनिधि' संजीवनी, सकल स्वास्थ्य सुख सार ।
एक बार अवलोकहुँ, बंधू हृदय विचार ॥

गुरुवर लीलाशाह का, अनुपम आशीर्वाद ।
'गागर में सागर' भरा, पावन दिव्य प्रसाद ॥

स्वस्तिक की महिमा

मन की शांति व ध्यान के लिए पूजाघर में स्वस्तिक अवश्य बनायें तथा उस पर आसन बिछाकर बैठें। शयनकक्ष में पलंग के नीचे भी जमीन पर स्वस्तिक बना सकते हैं। स्वस्तिक की रेखाएँ घर में उपस्थित ऋणात्मक ऊर्जा को ग्रहण करके उसे धनात्मक ऊर्जा में परिवर्तित कर धनात्मक ऊर्जा की कमी की पूर्ति करती हैं।

निम्नलिखित विधि से निर्मित स्वस्तिक २७ नक्षत्रों की ऊर्जा को एकत्रित करता है।

विधि :- गोमूत्र, गंगाजल, इत्र, कुमकुम एवं हल्दी इन ५ सामग्रियों के मिश्रण से स्वस्तिक का चिह्न बनायें। स्वस्तिक बनाते समय पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर रेखाएँ अंकित करके धन का चिह्न बनायें। फिर उसे स्वस्तिक का आकार दें।

ध्यान रहे कि उलटा स्वस्तिक न बने। स्वस्तिक की प्रत्येक दो भुजाओं के बीच तथा धन के चिह्न के ठीक बीच (जहाँ रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हैं) एक-एक बिंदी लगायें।

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTERED. NO. GUJ/1132/2003. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.